UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180857
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81·6 | A 27 P Accession No. G.H. 191

Author अग्निहोत्री, प्रभुदयालु।

Title पश्चिमा। 1956

This book should be returned on or before the dat last marked below.

मुद्रक—
शुभचिन्तक प्रेस,
जबलपुर।

प्रथम संस्करण
अक्टूबर १९५६

डेढ़ रुपया

'पश्चिमा' के विषय में

अपनी बात—

'उच्छ्‌वास'—'अरुणिमा'—'पश्चिमा'। कोई दस वर्ष की लम्बी अवधि के बाद यह तीसरा संग्रह प्रकाश में आ रहा है, यद्यपि इसकी सभी रचनायें समय-समय पर प्रकाशित और प्रसारित हो चुकी हैं। 'अरुणिमा' के विषय में एक समालोचक मित्र ने लिखा था, "इसमें आग और आँसू, प्रलय और प्रणय साथ-साथ खेलते हैं।" 'पश्चिमा' भी 'अरुणिमा' की इस प्रवृत्ति का परित्याग न कर सकी। आज लगता है, जैसे मैं शरत्पूर्णिमा की उस सान्ध्य वेदी पर खड़ा हूँ जहाँ ज्योत्स्ना की किरणें बढ़ते तामिस्र और ढलती अरुणिमा, दोनों को अङ्कसात् उन्हें दिव्य सुधा से अवदात कर देती हैं।

समर्पण—

काव्य-सम्बन्धी मान्यताओं के विषय में मैंने 'अरुणिमा' में विस्तार-पूर्वक चर्चा की थी। आज भी उनमें कोई परिवर्तन नहीं आ पाया है। हाँ, केवल इतना जोड़ना चाहूँगा कि हिन्दी-काव्य में एक नवीन शक्ति का उदय हो रहा है। और मैं इस संग्रह में भले ही उनके साथ पूरी तरह कदम मिलाकर न चल सका होऊँ, किन्तु मुझे उन प्रगतिशील और प्रयोग-प्रवण तरुण साथियों की साधना पर विश्वास है जो हिन्दी-काव्य के अन्तर और वाह्य को अधिक सचेतन एवं अभिराम बनाने में लगे हैं। 'पश्चिमा' मेरी एक यात्रा के अन्त और दूसरी के प्रारम्भ का संकेत है। इस धारणा के साथ मैं अपना यह संग्रह युग की तरुण पीढ़ी के वलिष्ठ करों में समर्पित करता हूँ।

कृतज्ञता—

सम्मान्य भाई रामानुज लाल जी श्रीवास्तव की प्रेरणा ने ही इन कविताओं को पुस्तक का रूप दिया है। भाई रामेश्वर जी गुरु तथा मेरे छात्र, तरुण कवि श्री राजेन्द्र तिवारी के सहयोग के लिये, भी मैं उनका अनुगृहीत हूँ।

ये पंक्तियाँ लिखते समय मैं प्राणों में उन अनेक ममता-मयी मूर्तियों के अमूर्त शीतल स्पर्श का पुनः अनुभव कर रहा हूँ जिनके कारण ही जीवन जीवन रह पाया और जिनके स्नेहिल प्रसाद का ही दूसरा नाम 'पश्चिमा' है। ममता के इन मूर्त चित्रों में बापू और उनकी सेवाग्रामीण कुटी का चित्र सर्वोपरि उभर कर सामने आ रहा है जिनकी वत्सल छाया में मेरे न जाने कितने गाये अन-गाये गीतों ने विश्राम-लाभ किया है और जिनकी सजल स्मृति से इस संग्रह के अनेक गीत स्नात हैं।

शरत्पूर्णिमा, सं० २०१३
महाकोशल महाविद्यालय
जबलपुर।

प्रभुदयालु अग्निहोत्री

* अनुक्रम-सूचिका *

क्र० सं०	प्रथम पंक्ति		पृष्ठ
१	सीस हाथ पर रख पैरों से करना पथ-निर्माण है	...	१
२	मैं कब से रचने बैठा हूँ मानव की तसवीर	...	३
३	यह वन-बाला, वन-बाल-विहगि	...	६
४	जीवन को आधार चाहिये	...	१४
५	बहुत दिनों से मैंने जी भर गाया कोई गीत नहीं है	...	१५
६	बहुत चाहता हूँ न सुने जग ये दरदीले गीत हमारे	...	१७
७	याद नहीं फिर भी लगता है, है तुमसे पहचान पुरानी	...	१९
८	मैं तुमसे इतनी दूर चाँद भी जितनी दूर नहीं	...	२१
९	प्रिय तुम्हारे प्यार का वरदान हूँ मैं	...	२३
१०	एक पग कहता चला चल, दूसरा कहता ठहर जा	...	२५
११	आज मेरे देव को अर्चा नहीं स्वीकार	...	३०
१२	मान है मनुहार भी है	...	३१
१३	तुम इन गीतों में मुसकाओ	...	३३
१४	माँग रहा मन प्यार तुम्हारा	...	३४
१५	आज नयन भर भर आते हैं	...	३५
१६	यह स्नेह-सिक्त बाती बन जलती जाये	...	३६
१७	मैं किसी का प्यार लेकर क्या करूँगा	...	३८

१८ तुमने क्या कर दिया प्राण यह ... ४०

१६ आ रही हो ... ४१

२० मधु ऋतु आज खिली फिर मन में ... ४२

२१ बीत चला पल पल कर जीवन ... ४३

२२ यह किसी का प्यार बेसुध ... ४४

२३ फिर प्रलय की रात आली ... ४५

२४ और खेलना था जीवन में एक नया नाटक अलबेला ... ४७

२५ आज रह रह कर तुम्हारी आ रही है याद ... ४६

२६ कैसे उनको पास बुलाऊँ ? ५६

२७ मेरे मुरझाये मधुवन में ये गीत मदिर गाया न करो ... ५७

२८ सहज सुभग शृङ्गार करो तुम ... ५८

२६ मेरी सूखी आशाओं में अब फिर बहार आये तो क्या ? .. ६०

३० क्या पूजा क्या ध्यान करूँ मैं ? ... ६२

३१ गान कैसा ? ... ६४

३२ तुम्हारी सावनी आँखों गगन में फूल खिलते हैं ... ६६

३३ कैसे पावन प्यार भुलाऊँ ? ... ६७

३४ अर्चना के दीप हो जलते रहो ... ६८

३५ आज गगन में बादल छाये ... ७०

३६ सखी री वह पूनम की रात ... ७१

३७ बड़ी सुबह धरती पर उतरी तारों की बारात है ... ७२

३८ शंखध्वनि हो उठी, उठा फिर सत्याग्रह का नारा ... ७४

३६ महाक्रान्ति के अग्रदूत, हे विश्वशान्ति के वर सेनानी ... ७६

४० कौन चर्ला तूलिका तोड़ तुम मेरा बनता चित्र मिटाने ... ७७
४१ कोलाहल मच गया वधिक की भौंहों में बल आया ... ७६
४२ छू नहीं पायी जिसे पहली किरन ... ८१
४३ हे चिर प्रशान्त, हे चिर महान ... ८४
४४ ब्रजपात दारुण हे ! ... ८५
४५ बीत गया एक वर्ष ... ६१
४६ हो गया प्रभात ... ६५
४७ बापू एक प्रकाश कि जिसने युग के सोये प्राण जगाये ... १००
४८ सुप्रभात ... १०३
४६ दूर गये बादर कजरारे फिर से खिली जुन्हाई ... १०६
५० कशमकश है ... १०८

१

सीस हाथ पर रख पैरों से करना पथ-निर्माण है।
साथी, आज नहीं गीतों के पथ चलना आसान है।

बहुत दिनों के बाद आज गुलशन में आई है बहार,
कली-कली पर रंगीनी है, पत्ती-पत्ती पर निखार,
आज तितलियों की भौंरों से पहली-पहली छेड़छाड़,
पहली मत्त पवन की थिरकन, पहला कलियों पर खुमार,

नयी सुबह के सपनों में खोई-खोई-सी हर किरन,
और पंछियों के कण्ठों में मीठा-मीठा गान है।

यह तूफान बढ़ा तो अपना हरा बाग जल जायगा,
सपनों का सुरलोक मोम के दीपों-सा गल जायगा,
इसीलिये कहता हूँ इस दावानल का मुख मोड़ दो,
गर्दन पर उठने वाला यह खूनी पंजा तोड़ दो,

कौन शिला है जो मानव का बढ़ा हुआ पग रोक दे,
सोये तो मानव मिट्टी है, जागे तो भगवान है।

जीवन है यदि तो कंकालों में नवजीवन डाल दो,
बुझे हुये जो दीप उन्हें अपने दीपों से बाल दो,
गीत नहीं, वह करो कि डूबी साँसों में स्वर आ सके,
कल का भूला पथिक आज खुद अपनी राह बना सके,

मानवता के सिर मँडराया एक नया तूफ़ान है,
जीवन की वीणा में गूँजा आज मरण का गान है।

इस विराट संस्कृति का स्वामी, पर कितना कंगाल है,
ज्ञानी विज्ञानी मानव का झुका-झुका-सा भाल है,
सब कुछ जीत चुका, वह अपने ही मन से मजबूर है,
अन्तरिक्ष के पास किन्तु मानव अपने से दूर है,

अपनी अमित शक्ति पर मानव आज स्वयं हैरान है,
जीवन में ज्वाला जलती है, जीवन एक मसान है।

रक्त-क्रान्ति के अंगारों से धरा अभी तक लाल है,
यह विराट् का पुत्र नहीं, अब तो हिलता कंकाल है,
इसे क्रान्ति का पथ न दिखाओ, इसे असीम दुलार हो,
इसकी चोटों को सहलाओ, इसका पन्थ बुहार दो,

मत इसकी भूलों को देखो, इसे अभय की सीख दो,
आज स्वयं अपनी आकृति से डरा-डरा इन्सान है।

❀

२

मैं कब से रचने बैठा हूँ मानव की तसवीर,
किन्तु वर्तिका हिल जाती है खिंचती नहीं लकीर।

लगता है तसवीर दृगों में जैसे उतरी उतरी,
फिर खो जाती है जैसे अंजन में रेख सुनहरी,
असुर बने, सुर बने, बने कितने खालिक पैगम्बर,
मेरी रचनाओं में उतरा कई बार विश्वम्भर,

पर अब तक मैं बना न पाया मानव की तसवीर।

मैंने मूरत गढ़ी कि जिसने आदि-शक्ति को साधा,
भू से लेकर महत्तत्व तक को बन्धन में बाँधा,

उस मानव की हुंकारों से काँप उठा संसार,
औ' चरणों में लगा लोटने भूमा का अधिकार,
पर मैं उसमें जगा न पाया मानव-उर की पीर।
ऐसा मानव जिसे स्नेह का झीना बन्धन बाँधे,
किन्तु वज्र के आघातों से झुकें न जिसके काँधे,
वक्ष तान कर चले न जिसका मस्तक कभी विनत हो,
मानव जो अर्चन, वन्दन, पूजन से परम विरत हो,
मानव जिसको बेध न पाये कभी काल का तीर।
वह मानव जिसकी दुनियाँ में श्रम से मिले सुफल,
जहाँ न पूँजी के चरणों पर चढ़े बुद्धि औ' बल,
जहाँ न अबलों की हड्डी पर उठें राज-प्रसाद,
जहाँ अधखिली कलियाँ गल-गल बनें न केवल खाद,
उगें साधना के नव अंकुर पाकर निष्ठा-नीर।
यह मानव का चित्र कि इसमें ऊषा की छवि भर दूँ,
मन कहता है, इसके विक्षत तन पर चन्दन धर दूँ,
अपनी स्वर-लहरी से हर लूँ इसकी सकल निराशा,
इसके मुरझाये अधरों को दे दूँ स्मित की भाषा,
पर रह-रह कर प्रश्न एक जाता है उर को चीर
प्रश्न, कि तूली ने कागद पर कंचन-कुसुम खिलाये
पर इससे सूखे बिरवों पर कब अंकुर हरियाये?
प्रश्न, कि गीतों की गर्मी से कितने आँसू सूखे?
भावों से अब तक भर पाये उदर कौन से भूखे?
मेरा रस बन कर उतरा कब माँ के स्तन में क्षीर।

चित्र चाहिये क्योंकि हमें आखिर गढ़नी है मूरत,
शीशा हो तो शीघ्र सँवर जाती है जैसे सूरत,
और हमें तो एक नया मानव सचमुच गढ़ना है,
आज खड़े हैं जहाँ वहाँ से कुछ आगे बढ़ना है,
मिट्टी में जीवन भरने को मन हो रहा अधीर।
बोला कौन, तूलिका रख दो, पट को करो प्रणाम,
खुले खेत में चलो जहाँ पथ हेर रहा घनश्याम,
स्वेद-बिन्दु भू पर गिरकर बन जाते मूँगा-मोती,
श्रम की वंशी से जगती है सिन्धु-नन्दिनी सोती,
कलम-कुदाली के संगम पर बसती है तकदीर।
ये ऊँचे आदर्श और ये दया-धरम की बातें,
धूयें के धौरहर, शोषितों को ठगने की घातें,
तुन्दिल को तुन्दिलतर करने वाले अर्थ-विधान,
और कर्म-विरहित आडम्बरमय लम्बे व्याख्यान,
इन्हें लगा दो आग और फिर करो नयी तामीर।
कर्म और भावना मिलें तो जीवन में रस जागे,
स्नेह और आदर्श जुड़ें तो भीति मरण की भागे,
हेमपात्र दो हटा, सत्य का ढँका हुआ मुँह खोलो,
मानव की, मानव की, केवल मानव की जय बोलो,
जो मानव की मूर्ति वही तो भूमा की तसवीर।

❀

३

यह वन-बाला,
वन-बाल-विहगि
उड़ती फिरती है डाल-डाल,
पाटली कटोरों में भर-भर
यौवन की मदिरा ढाल-ढाल ।
कलियाँ तोड़े, कोंपल मोड़े,
बल्लरि से बल्लरियाँ जोड़े,
उन्नत स्कन्ध, श्यामल आनन,
वर्तुलाकार युग पृथुल जघन,

भारे-से गदकारे कपोल—
युग बँधीं पिंडलियाँ गोल-गोल।
अक्षत यौवन के आलवाल
प्रस्फुटित युगल कोरक अराल।
पल्लव-अशना, लघु-लघु-वसना,
यह वनतनया, मृग-अजिन-प्रिया।
हाथों में इसके धनुष-बाण,
पैरों में उद्गति का उफान।
हिरनों से होड़ लगाती है,
यह तारों के सँग गाती है।
वह घास-पात सी बढ़ती है,
यह फूलों-सी खिल पड़ती है।
इसमें मिलते पूरब-पछाँह।
बिजली-बादल औ' धूप-छाँह।
इस पर व्रीडा का भार नहीं,
इसको सीमा स्वीकार नहीं।
जो मन भाया, वाणी पर है,
इसको हर अंग बराबर है।
इसकी बाधा है शीत नहीं,
वर्षा से होती भीत नहीं।
इसका बेचूक निशाना है,
हर थल जाना पहचाना है।

× × ×

जब आम और महुए मँह-मँह
कानों में कुछ, जाते कह-कह,
मुनियाँ मनुहार सुनाती है,
बावरी कुइलिया गाती है,
छाती हरियाली तालों पर,
लाली अशोक के गालों पर,
मोरों का कुहुक-भरा नर्तन
कर देता वन को वृन्दावन,
शृंगों से जब धीरे-धीरे मृग हिरनी को खुजलाता है
औ' कनक-पुटों में मधु भर-भर भ्रमरी को भ्रमर पिलाता है,
जब धरती वसन बदलती है,
बासन्ती वात मचलती है,
दूर्वा रोमांचित होती है,
सपने मालती सँजोती है,
जब चटक चाँदनी खिलती है,
माधवी आम से मिलती है,
औ' चाँद उतरकर आता है,
चाँदी का फर्श बिछाता है,
यौवन तब वाणी पाता है,
औ' इसका राजा आता है।
पत्तों, फूलों, बल्लरियों से रानी का मुकुट सजाता है।
सजता है तन,
सजता है मन,

सजता है चिर-अतृप्त यौवन।
फिर उटज, झुरमुटों, झाड़ी से,
भू-गर्भों और पहाड़ी से
झुक, झुमक झूमती हैं परियाँ,
कितने किन्नर औ' किन्नरियाँ
हाथों से कटि से कटि बाँधे
वे एक दूसरे को साधे।
यों पंक्ति-पंक्ति औ' यूथ-यूथ,
ये युवक-युवतियों के वरूथ
पीते हैं और पिलाते हैं,
उन्मत्त नाचते गाते हैं।
बज उठते हैं ढप और झाल
कैसी है इनकी सधी ताल!
कुछ ठुमक-ठुमक, कुछ उछल-उछल
भरते छलाँग मृग से चंचल।
इनमें चाहे वह छन्द न हो,
स्वर का वह सीमा-बन्ध न हो,
पर है इनमें गति औ' प्रवाह
उज्वल उमंग, उन्मद उछाह।
ये मदिर गीत, मादक नर्तन;
इनमें है जीवन की धड़कन।
य केवल अपने लिये जगे,
उर में फूले, उर से उमगे।

बीतीं घड़ियाँ, ढल चले प्रहर,
इनको इसकी क्या भला खबर !
मधु-पात्र और मृन्मय प्याली
होते हैं भर-भर कर खाली।
तारे फिर सोने जाते हैं,
राजा-रानी रह जाते हैं।
बनते हैं तन-मन-प्राण एक,
होते हैं साँझ-विहान एक।
रानी निज में खो जाती है,
धीरे-धीरे सो जाती है।

× × ×

जो मन को कर दे चूर-चूर इसने वह आधि नहीं पायी,
जीवन को जो रीता कर दे इसने वह व्याधि नहीं पायी,
जिससे नर घूमे शल्य-विद्ध इसको वह घात नहीं आती,
जिसमें कल का विश्वास न हो इसको वह बात नहीं आती।
इसकी झूठी परतीति नहीं,
इसकी वह ओछी प्रीति नहीं,
छोटे-छोटे वातूलों से
जानी, बेजानी भूलों से
जो जब चाहे तब टूट जाय,
बँध-बँधकर आँचल छूट जाय।
बस राज-दण्ड जिसको बाँधे,

सौ अविश्वास जिसके काँधे।
यह बोले उसका अर्थ एक,
जो कर गह ले बस वही टेक।
प्राणों का इसको मोह नहीं,
मरने मिटने का छोह नहीं।
मानस आवेगों पर संयम इसने वह गैल नहीं जानी,
अब तक विवेक का चढ़ न सका इसकी इच्छाओं पर पानी।

× × ×

जीवन में इसके मधुर पर्व आते यों कितनी बार भला ?
सौ-सौ संघर्षों के काँटों पर इसका जीवन-सुमन खिला।
यह कुआँ खोदती है प्रतिदिन, औ' अपनी प्यास बुझाती है,
यह अगनंगी रानी कितनी रातों भूखी सो जाती है।
है ढाक-पात से ढँकी एक झोपड़ी कि इसका राजमहल,
मुँह खोल खड़ी हो कब्र छिपाये ज्यों अभ्यन्तर की हलचल,
आँधी आये तो उड़ जाये,
उड़ती चिनगी छू गयी कि बस पल भर में होली मन जाये।
बरखा जब रिमझिम गाती है,
यह उसके स्वर दोहराती है।
यह बैठे रात बिता देती,
अड़ जाते पत्थर-प्रहर कभी
तो उन्हें काटने को रानी
धीरे-धीरे कुछ गा लेती।

इसके कैसे विश्वास निठुर,
कैसा निर्दय इसका विधान
जिसमें प्राणों का मूल्य ठीकरों के समान !
है गाँव-गाँव का एक तन्त्र
जिसके पीछे सब बने यन्त्र,
फिर भी है इसमें नर-नारी में भेद नहीं।
इस थाली का भोजन उसमें
चुपके-चुपके हो छन जाये
ऐसा है कोई छेद नहीं।
इसलिये ऊँच औ, नीच नहीं
अन्तर जन-जन के बीच नहीं।
ये रेल, तार या वायुयान
इनका कुछ इसको नहीं ज्ञान।
इसकी पशुओं सी भाषा है,
अपनी जीवन-परिभाषा है।
यह युगों-युगों से अपमानित,
यह भू-लुण्ठित, शापित कुत्सित।
पर इसको विधि का शाप नहीं,
क्या यह हम सबका पाप नहीं ?
यह हम सबकी माँ-जाई है,
बस एक बीच में खाई है।
आओ, मिलकर इसको पाटें,
झंखाड़, झाड़ पथ के छाँटें,

जिससे प्रकाश अवरुद्ध न हो,
सड़-सड़ कर नीर अशुद्ध न हो।
इसकी गति से अनभिज्ञ, अन्ध
इसके जीवन पर लिख निबन्ध
हम डी० लिट० तो बन जाते हैं
औ' फूले नहीं समाते हैं।
अब इसके जीवन में उतरें,
इसके सँग डूबें और तरें।
कुत्सित नर-पिण्डों की जननी
यह वन-रानी इस हेतु बनी?
साहस कर हाथ बढ़ाओ तो,
'संगच्छध्वं संवदध्वं' यह चारु ऋचा दोहराओ तो।
नभ में ये जितने तारे हैं
कुछ चंचल कुछ मन मारे हैं,
कुछ ज्योतिमान, कुछ ज्योति-हीन,
कोई उज्वल, कोई मलीन;
पर ये मिल जुलकर चलते हैं,
ये संग-संग ही जलते हैं।
फिर यह क्यों पथ में रहे पड़ी?
फिर यह क्यों तम में रहे गड़ी?
इसके पथ में भी दिया जले,
अब यह भी अपने संग चले।

(मध्यप्रदेशीय आदिवासियों के जीवन के आधार पर)

५

बहुत दिनों से मैंने जी भर गाया कोई गीत नहीं है।

अब भी मन भूखा-भूखा है, प्राणों में अनुरक्ति हरी है,
रीत रीत भरती रहती नित-नित नव साधों की गगरी है,
नयनों में बरसात बहुत है, पर गीतों में दाह बहुत है,

इन गीतों का बोझ सम्हाले ऐसा कोई मीत नहीं है।

कोकिल और कण्ठ दोनों हैं पर अब वह मधुमास नहीं है,
मन्दिर और मूर्ति अक्षत है पर वैसा विश्वास नहीं है,

अब मैं पथ के शूल-शूल को फूलों के परिधान पिन्हाता
चलता हूँ, पर जान रहा हूँ यह जीवन की जीत नहीं है।

प्राणों की विद्युत-आभा पर एक उदासी-सी बदली है,
मैंने जलते अंगारों पर अपने हाथों राख मली है,
और कुहासे में हारिल-सा मन भूला पथ खोज रहा है,
ऊषा को वन्दन करता है, अन्धकार से भीत नहीं है।

बूझ सका है क्या अब तक जग मेरे इन गीतों की भाषा?
मेरी ही कह-कह झूमा है वह अपने मन की अभिलाषा।
मैं कब से तिल-तिल कर दारुण वर्तमान को काट रहा हूँ,
पर भविष्य का छोर न मिलता आता पास अतीत नहीं है।

जीवन के जलते पृष्ठों ने एक सरल-सी याद न खोयी,
जैसे जले दिया की बाती चार पहर निःस्नेह सँजोयी।
मेरे गीतों के आँचल में शूल फूल से मृदु बन जाते,
और कौन-सा लघु रज-कण जो पावन और पुनीत नहीं है।

६

बहुत चाहता हूँ न सुने जग ये दरदीले गान हमारे,
कभी कभी, पर, हो जाते हैं अति आकुल ये प्राण हमारे।

कल तक तो मैंने जीवन के संघर्षों को प्यार किया था,
राह छोड़ चलने वाले राही का जय-उच्चार किया था;
किन्तु आज पथ पर मेरे ही पावँ शिथिल पड़ते जाते हैं,

सन्ध्या बन ढलते जाते हैं वे आरक्त विहान हमारे।

कल मेरे कड़खे की धुन सुन कर केका कुछ शरमायी थी,
कल ही तो मूरब पर सिर नत देख हँसी मुझ को आयी थी;

आज चातकी का क्रन्दन सुन बार-बार आँखें भर आतीं,

मूरत पर चढ़ने को आकुल हैं आँसू नादान हमारे।

कल जाने मेरे मन्दिर में कौन दीप बनकर जलता था,
पथ में मेरा बोझ कौन अपने काँधे रख कर चलता था;
मेरी दृष्टि रही छाया पर, मैं आकृति पहचान न पाया,

और बुलाने में असफल अब होते हैं आह्वान हमारे।

इसीलिये तो मैं अनजाने कभी-कभी कुछ कह जाता हूँ,
इसीलिये तो मैं तिनके-सा एक लहर में बह जाता हूँ;
क्या जाने जग, प्यार किसी के जीवन में क्या कर जाता है,

क्यों हँसते-हँसते, कुम्हला जाते मन फूल-समान हमारे।

७

याद नहीं, फिर भी लगता है, है तुमसे पहचान पुरानी।
तुम्हें ढूँढ़ते ही बीते हैं, मेरे बचपन और जवानी।
तुम मेरे मन्दिर की प्रतिमा, तुम मेरे दीपक की बाती,
मेरे चाँद तुम्हारी आभा जल, थल, अम्बर नहीं समाती,
उस दिन जब मेरे आँगन में उमड़ घुमड़ मावस घहरायी,
वे तुम थीं, या चीर जलद के पटल दामिनी थी मुसकायी ?
तब काँटों की चिता बन गई थी सुहाग की सेज सुहानी।
याद नहीं, फिर भी लगता है, है तुमसे पहचान पुरानी।
तुम इतनी हो पास, तुम्हारी गुरुता मैं पहचान न पाता,
झुक जातीं हो प्रथम, कभी जब मैं चरणों तक हाथ बढ़ाता,
मुझे हुआ विश्वास सुहागिन छीन काल से निज प्रिय लायी,
उस दिन जब इस बुझे प्राण की तुमने फिर से ज्योति जलायी,

पाते ही मृदु परस बह चली बन निर्झर जड़ता पाषाणी।
याद नहीं, फिर भी लगता है, है तुमसे पहचान पुरानी।

तुम्हें देख, लगता है, इस जलती धरती पर भी छाया है,
जब-जब तुम दिख पड़ीं तभी तो प्राण-पपिहरी ने गाया है,
तुम हो तो तपती कोरों की बूँद न भू पर झर पायेगी,
तुम हो तो यह पिकी काल के सिर चढ़कर पंचम गायेगी,

पा तुमको परितृप्ति बन गयी है युग-युग की प्यास पुरानी।
याद नहीं, फिर भी लगता है, है तुमसे पहचान पुरानी।

संसृति के धुँधले सपने में एक सत्य प्रतिबिम्ब तुम्हारा,
साँसों के भूले हारिल को एक तुम्हीं तो हो ध्रुव तारा,
इतनी पावनता, ममता पर कब विश्वास धरा कर पाती,
मेरी पथरायी आँखें यदि खींच न तुमको भू पर लातीं?

मेरी जनम-जनम की साथी, मेरी जनम-जनम को दानी।
याद नहीं, फिर भी लगता है, है तुमसे पहचान पुरानी।

इसे कम्पित दीपक की लौ की आस तुम्हारा ही अंचल है,
तटिनी की विक्षत लहरों को तट की बाहों का संबल है,
पंछी की घायल पाँखों का नीड़-निलय ही एक सहारा,
जी जाये, प्रिय, मरण मिले यदि एक मिलन-संकेत तुम्हारा,

मुझे अमर विश्वास तुम्हारी करुणा का प्रतिपल कल्याणी।
तुम्हें ढूँढ़ते ही बीते हैं मेरे बचपन और जवानी।

❀

८

मैं तुमसे इतनी दूर चाँद भी जितनी दूर नहीं।
प्रिय मैं इतना मजबूर चाँद जितना मजबूर नहीं।

मैं रात-रात भर जाग चाँद का मन बहलाता हूँ,
चन्दा के मन की चोट गीत गा-गा सहलाता हूँ,
मैं अपने उर की पीर अधर में ही सी लेता हूँ,
अपने नयनों का नीर नयन में ही पी लेता हूँ।

मेरी पीड़ा पी-पी कर जब चन्दा मुसकाता है,
तब दूर थका पंछी भी मेरे स्वर दोहराता है,
मैं तुमसे इतनी दूर चाँद भी जितनी दूर नहीं।

चन्दा के उर में बनी जलन की एक निशानी है,
मेरे जलने की भी छोटी-सी एक कहानी है,
जब-जब चन्दा से रूठ चाँदनी नीचे आती है,
मेरे मन की विरहिन रोती-रोती सो जाती है।
जब सौ रूपों में चाँद मचलता भू पर आता है,
घायल प्राणों का दर्द पपिहरी बन कर गाता है,
मैं तुमसे इतनी दूर चाँद भी जितनी दूर नहीं।
मैंने भावों से ही तसवीर तुम्हारी आँकी है,
चन्दा के दर्पण में ही मूर्ति तुम्हारी झाँकी है,
हो जाय न मैला कहीं तुम्हारी छवि का गंगाजल,
मैं फैला भी कब सका प्यार का शरमीला आँचल ?
चाँदनी लपेटे हुये चाँद अपने भुज-पाशों में,
मैं आज बिंधा बैठा अपने सपनों की लाशों में।
प्रिय मैं इतना मजबूर चाँद जितना मजबूर नहीं।
धरती पर हँसता रूप, गगन में पूरनिमा गाती,
हर किरन फूल की खुली गोद में इठलाती आती,
लहरों की पायल बजी पवन के मौन इशारों पर,
लुट चले सुरभि के कोष किसी की मृदु मनुहारों पर,
तारों में जो झलकी भीगी मुसकान तुम्हारी है।
हिमकन में जो जल रही सजल पहचान तुम्हारी है।
प्रिय तुम तो इतनी दूर चाँद भी जितनी दूर नहीं।

❀

६

प्रिय तुम्हारे प्यार का वरदान हूँ मैं।
साँझ आयी खिल उठे नभ में सितारे,
खो गये तम में विहग-मधु-बोल प्यारे,
सिन्धु-हिय ने तब तड़प जिसको पुकारा,
प्रिय तुम्हारी वह सजल मुसकान हूँ मैं।
तुम चलो यदि साथ तो पथ बीत जाये,
तुम रहो यदि तो न याद अतीत आये,
कल ढुलक दृग-बिन्दु बन भू पर गिरा था,
अब तुम्हारे कण्ठ का कल गान हूँ मैं।

आदि से जिस पर व्यथा के मेघ छाये,
सुन जिसे सौ बार भर-भर नैन आये,
पर तुम्हारी लेखनी का स्पर्श पाकर,
उस कथा का अब सुखद अवसान हूँ मैं।

भग्न वंशी को दिये जिसने नये स्वर,
स्पर्श से विकसे कुसुम फिर कण्टकों पर,
मौन मरघट में पुलक जिसने जगाये,
वह तुम्हारे गीत का सन्धान हूँ मैं।

रूपसी ऊषा, सजीली साँझ आयी,
पर न पल भर भी दिवा को बाँध पायी,
श्याम लोचन-कोर में उसको बसाया,
यामिनी के अश्रु का अभिमान हूँ मैं।

१०

एक पग कहता चला चल, एक पग कहता ठहर जा।
इस डगर चलते चुके हैं बीत
कितने मास कितने वर्ष,
कितने घाम कितने शीत,
देखे पतन और प्रकर्ष।
हम रहे चलते,
रहे छलते नियति को,
भाग्य-गति को
क्यों कि सीखा था कि जीवन कर्म है

मर्म जीवन का यही, चलते रहो,
कर्म-पथ पर मृत्यु को छलते रहो।

× × ×

और लो आया दुराहा,
पाँव ने विश्राम चाहा।
ढल गया दिन और पंछी लौट आये,
मौन नीडों में मिलन के गीत छाये।
झाँकने नभ से लगा है एक तारा
सजल एकाकी बिचारा।
एक पथ-भूली खगी है
खोजती है गैल पर मिलती नहीं है।
है पवन ठहरी,
सरित में सो गयी लहरी।
पड़ गये लंगर कि नौकायें बँधी हैं,
किन्तु वह देखो क्षितिज पर एक छोटी-सी तरणि
बढ़ती, बढ़ाती मन्द, पर निश्चल चरण
डूबने-सी अब लगी पल-पल निविड बढ़ते अँधेरे में,
दृष्टि कीलित पुतलियों के श्याम घेरे में।
और मैं दिग्भ्रान्त-सा आकुल

खड़ा हूँ इस दुराहे पर,
छोड़ कर पीछे अमित
पगदण्डियाँ जानी अजानी।

× × ×

कौन यह बोला, 'अरे अरे ठहरो बटोही,
तुम बढ़ो पथ पर न यों बनकर निमोही।
कर्म है जीवन ? नहीं, यह अन्ध-गति है।
घूमता है चक्र-रथ-सा यह कभी रुकता नहीं है।
ढो रहे हैं स्कन्ध जग के काल-पद पर।
कर्म, केवल कर्म छलता है मनुज को।
कर्म साधन है, नहीं है साध्य।
यह सलिल-धारा कि जो सिर फोड़ती है
इस उपल पर विह्वता; पथ खोजती है
किस मिलन का ?
और माती वात किसको ढूँढ़ती ?
ये नवल कलियाँ
अभी जो खिल उठीं नभ-वाटिका में
जोहती हैं पन्थ किस का सजल, झिलमिल ?
कर्म तो अथ है अरे, इति प्यार,
प्यार में गूँथा चिरन्तन ने जगत का हार।'

× × ×

'स्नेह ?
स्नेह है अनुरक्ति, मिथ्या युक्ति।

स्वर्ण का दृढ़ पाश, आखिर पाश,
जीव का बन्धन।
करो निष्काम केवल कर्म।
उपनिषत का और गीता का यही है मर्म।'
एक वाणी ने कहा।

× × ×

और अपरा ने दिया उत्तर—
'कब बिना आसक्ति के है कर्म ?
भ्रान्त, यदि यह उपनिषत का मर्म।
कर्म की तो प्रेरणा है प्यार;
स्नेह, श्रद्धा, औ' समर्पण ही जगत-शृंगार।
बन रहा मरु आज जीवन,
स्नेह के घिर जायँ सावन और बरसें,
चिर-पिपासित मरुधरा के गात सरसें।
विश्व भूखा है लुटा दो प्यार,
दो इसे श्रद्धा, सनेह, दुलार।
फूँक दो उपदेश औ' आदर्श
जो खड़े हैं अन्धता की भीति पर।
खोल दो उर के निरोधित द्वार,
फिर लुटा लो स्नेह, औ' समवेदना का
मुक्त-कर उपहार।'

× × ×

सुन रहा हूँ मौन।

कर्म कर आगे बढ़ाता,
स्नेह आँखें डबडबाता,
एक कहता इस डगर चल, एक कहता इस डगर आ
और मैं ठहरूँ ?
अभी है शक्ति तन में, शक्ति मन में
जागती है ज्योति प्राणों में, नयन में।
मैं चलूँगा चीरता तम के निकर को,
मोड़ दूँगा मैं चरण उस ओर
हैं जहाँ विश्रान्ति, जाग्रत शान्ति।
नीति-विग्रह-वर्ग के, अधिकार के संघर्ष
हैं पहुँच पाते नहीं जिस ठौर।
मैं धरूँगा स्नेह-चरणों कर्म का उपहार।
विश्व में ही फिर कहीं मिल जायगी चिर मुक्ति।
मुक्ति क्या है ? शून्य,
सृष्टि है आसक्ति का फल,
स्नेह ही है इस धरा के पान्थ का सम्बल।
अब रुकूँगा मैं न,
यदि कहेगा कर्म बढ़ चल मैं कहूँगा इस डगर आ,
स्नेह का उपहार बन जा।
एक पग कहता चला चल, दूसरा कहता ठहर जा।

*

११

आज मेरे देव को अर्चा नहीं स्वीकार।

वन्दना के गीत, सो जा भग्न उर में मौन,
दीन, तेरे अश्रु से आँचल भरेगा कौन?

स्वर्ग-श्री से सज रहा है आज उनका द्वार,

झुक गया नभ का हृदय उनकी कृपा के भार,
और कण-कण माधुरी से कर रहा शृंगार।

लुट रहे हैं मुक्त मेरे देव के उपहार।

एक इंगित बिछ चले मेरे पदों में फूल,
स्वर्ण उनके स्पर्श से बनने चली यह धूल।

पर मुझे वरदान की भिक्षा नहीं स्वीकार।

था चला बनने पुजारी बन गया आराध्य,
साधना को भूल साधक बन गया है साध्य।

किन्तु आराधन न, मुझ को चाहिये था प्यार।

❀

१२

मान है मनुहार भी है।
इन व्यथा-तापित स्वरों में मौन हाहाकार भी है।

इन लजीली पुतलियों से झाँक कोई कह रहा है,
मुग्ध, तेरा ही प्रणय तो अश्रु बन-बन बह रहा है,
इन दृगों की सीपियों में वेदना का कब बसेरा ?
मान के इन मोतियों में स्नेह का संसार तेरा,

ज्वार का आवेग है अवरुद्ध पारावार भी है।

सूर के बन्दी दृगों ने विश्व का वैभव न जाना,
वन्दना के दो पदों को साधना का अन्त माना,

जो स्वयं सौ बार अर्पित हो किसी की हो न पायी,
अर्घ्य की अंजलि उठी अपराधिनी-सी लौट आयी,

यह किसी की जीत भी है, यह किसी की हार भी है।

चाहता था स्वर्ग के सुख-साज से शृंगार कर दूँ,
वार दूँ कंचन पदों पर, मोतियों से माँग भर दूँ,
किन्तु मानिनि, भावना का भार केवल दे सकूँगा,
जो रुला दे वह करुण उद्गार केवल दे सकूँगा,

स्नेह की इस बेबसी में गर्व का अभिसार भी है।

एक क्षण को ही सही, हम लोक-बन्धन भूल पायें,
चल किसी निर्जन विपिन में बैठकर दो गीत गायें,
झाँकती हो मुग्ध राका, नाचती हो मत्त धारा,
और लुटता हो अवनि पर स्वर्ग का शृंगार सारा,

कह रही हो तारिका संकोच है, स्वीकार भी है।

❀

१३

तुम इन गीतों में मुसकाओ।
ओ गीतों के गेय, आज तुम स्वयं गीत बन आओ।

ये सरगम के तार पुराने क्या जाने कब टूटें,
और समर्पण के बन्धन ये कब, किस बिरियाँ छूटें,

बन्ध-मुक्त तुम इन तारों के बन्ध बनो, कस जाओ।

मैं कितनी रातों तारों के सँग जग-जग कुम्हलाई,
सुन पग-चाप मौन लज्जारुण ऊषा बन उठ धाई,

ओ मेरे, मेरी अतृप्ति के ज्वार बनो, लहराओ।

ऐसा मद चढ़ गया कि भूली अपना और पराया,
तुम्हें देख, दिखता है यह जग बस अपनी ही छाया,

मैं तुममें जागूँ, तुम मुझमें सुति बनो, बस जाओ।

❀

१४

मॉँग रहा मन प्यार तुम्हारा, माँग रहा मन प्यार ।

कहीं हरित आँचल-छाया में थके विहग-शिशु सोये,
कहीं घूमते हैं मधुकरियों के दल खोये-खोये,

झुकी हुयी हर डाल किसी की स्नेह-सुरभि के भार ।

सेमर की मखमली सेज पर लगी शुकों की भीड़,
दूर क्षितिज में एक सारिका खोज रही है नीड़,

सूरज का अनुराग ढूँढ़ता है सन्ध्या का द्वार ।

अन्त-हीन जीवन के सूनेपन से ऊबा-ऊबा,
किन्हीं सावनी सपनों में मन आज चाहता डूबा,

नयनों में उठ रहा तुम्हारी राका-छवि का ज्वार ।

सँजो-सँजो कर रखा हिये में पर-दृग का गंगाजल,
मेरे नयन नीर ने पाया सदा धूलि का आँचल,

आज अश्रु की कली माँगती अलि की मधु गुंजार ।

इन्द्र-धनुष से फूल रहे प्राणों में वंशी के स्वर,
टूट रहीं सीमा-रेखायें दूर हो रहा अन्तर,

प्राण, तुम्हारी स्मित-मदिरा का ऐसा चढ़ा खुमार ।

❀

१५

आज नयन भर-भर आते हैं।

चिर-पालित पलकों के प्रीतम सपने बन खोये जाते हैं।

कर जिनका आलोकित आँगन,
प्राण जले दीपक बन प्रतिक्षण,

वे पत्थर-परमेश हमें अब पूजा की विधि सिखलाते हैं ?

जिनका दिया गरल-सा जीवन,
पी हँस-हँस झूमा पागल मन,

वे दानी मेरे पीडा-कण को छूते भी शरमाते हैं।

जो शिशु-सा दो पल दुलरा कर,
फेंक चला पथ-रज में निष्ठुर,

ये याचक बन गीत उसी के चरण चूमने झुक जाते हैं।

❀

१६

यह स्नेहसिक्त बाती बन जलती जाये,
मेरे प्राणों में प्यास अमर भर देना !
उत्ताल तरंगों पर बहता आया है,
मेरा दुलार काँटों पर मुसकाया है,
तुम मुझे अतल मँझधार छोड़ दो माँझी,
मुझ पर नभ के अंगारों की छाया है।
मैं चूम-चूम तूफ़ान असुध सो जाऊँ,
तुम तूफ़ानों में हास अमर भर देना।
मर्मी आघातों पर ओठों को सीना,
है सहज नहीं शूली पर हँस-हँस जीना,

फिर भी सीखा है कालपृष्ठ पर चढ़कर,
वरदान बाँटना अभिशापों को पीना।

मेरी श्रद्धा के चरण कभी कम्पित हों,
तो जीवन में विश्वास अमर भर देना।

क्या पीर कि जो थक कर कराह बन जाये,
क्या उस आँसू का मोल कि जो ढल ज़ाये,
करुणा बन कर जो उठे, कृपा बन बरसे,
वह स्नेह-ज्वार बन विरह-ज्वाल जल जाये।

मेरी पूजा के गीत अभी बन्दी हैं,
तुम गीतों में उच्छ्वास अमर भर देना।

ये बोल कभी अनजाने बह जाते हैं,
जाने क्या, कब, कानों में कह जाते हैं,
मेरे मन का ये मोल भला क्या जानें,
ये पीड़ा का आँचल भर छू पाते हैं।

जो बन न सके परितृप्ति मिलन-शापों से,
तुम जीवन में वह आस अमर भर देना।

*

१७

मैं किसी का प्यार लेकर क्या करूँगा ?

जो सुलगता ही रहे जलने न पाये,
जो तृषा की याचना पर मुसकराये,
व्यर्थ हाहाकारमय जिसकी जवानी,

उस उदधि का ज्वार लेकर क्या करूँगा ?

था चला कि अभाव को ललकार दूँ मैं,
रच नया अमरत्व का संसार दूँ मैं,
पर बिहंगिनि को न जब आवास भाया,

स्वप्न को आकार देकर क्या करूँगा ?

स्नेह का शिशु लाज के हाथों पला है,
लोक के आलोक से बचता चला है,
जब स्वयं समझी न मन की पीर रानी,

लाज का घूँघट हटा कर क्या करूँगा ?

प्राण, हैं हम दो विहग दो मंजिलें हैं,
रात भर को एक तरु पर आ मिले हैं,
प्रात होते ही हमें है दूर जाना,

संग परिचय-भार ढोकर क्या करूँगा ?

प्राण, दो रेखा समानान्तर बनाये,
हम रहे चलते कभी मिलने न पाये,
क्या यही कम साथ दो आँसू बहा लें,

हास के अंगार चुनकर क्या करूँगा ?

❀

१८

तुमने क्या कर दिया प्राण, यह तुमने क्या कर दिया ?
जीवन का अभिशाप, भार इन साँसों का ढोता हूँ,
हँस लेता हूँ मिल सबके सँग, सबके सँग रोता हूँ,
ममता का गुरु भार और तुमने उर पर धर दिया।
लगा हुआ भू से नभ तक जगमग तारों का मेला,
ऊँघ रहा सूने मन्दिर में मेरा दीप अकेला,
तुमने धूमायित बाती को जलने का वर दिया।
चला माँगने मुक्ति किन्तु मन माँग रहा है बन्धन,
और मरण का आराधक अब लगा चाहने जीवन,
तुमने प्यास जगा प्राणों में हालाहल भर दिया।
कब के जर्जर आदर्शों का घिसा हुआ पैमाना,
रहा नापता जग मेरा मन मैंने बुरा न माना,
पर तुमने भी तो इस शतदल पर पत्थर धर दिया।
एक मधुर आकर्षण में जब घूम-घूम थक जाते,
साँझ-सुबह रवि-शशि पल भर मिल सजल-सजल मुसकाते,
पर तुमने तो प्राण प्रणय का वह धन भी हर लिया ?

❀

१६

आ रही हो।
स्वर्ग से आलोक-बाला-सी उतरती आ रही हो।

ये नयन जानें न जानें, मैं पग-ध्वनि जानता हूँ,
प्राण की आराधना को प्राण, मैं पहचानता हूँ,

जोड़तीं अपने करों, ये भग्न तार बजा रही हो।
आ रही हो।

प्रिय तुम्हीं बन कण्ठ में स्वर, बोल मीठे बोलती हो,
कल्पना बन प्राण में चुपके सुरा-सी घोलती हो,

गीत ? मेरे कण्ठ से मेरी व्यथा तुम गा रही हो।
आ रही हो।

किस अमोही के लिये गोधूलि में दीपक सँजोया ?
और यह किसका वियोगी शून्य में भर-रात रोया ?

आँसुओं में पैठ रूपसि, किन्तु तुम मुसका रही हो।
आ रही हो।

❀

२०

मधुऋतु आज खिली है मन में।

डोल रही सौरभ मतवाली भू पर और गगन में।

यदि रहतीं तुम साथ न पग यों अधमग ही थक जाते,
एक दूसरे के काँधे हम कर रखते, बढ़ जाते,
फिर भी पन्थ बहुत बाक़ी है, दूर अभी मंज़िल है,
तुम यदि रहो साथ तो जाये मरण बदल जीवन में।

मैंने बोल सुने मरघट के, जीवन-पन्थ न देखा,
देखा धूमिल क्षितिज न विहँसी जहाँ कभी विधु-रेखा,
आँचल गीला रहा अश्रु से, कभी न सुधा नहायी,
वह ऊषा हँस उठी तुम्हारी एक मदिर चितवन में।

इस जग के कोने-कोने में खोज तुम्हें दृग हारे,
मिला कहीं पर रूप, कहीं कृति, बोल कहीं पर प्यारे,
कुछ परिचित से लगे न मन में पूरा चित्र समाया,
बदले कितने वेष तुम्हारे प्रिय, चिर-अन्वेषण में।

रवि ने बुझे दीप की आभा साँझ पड़े लौटायी,
मेरी बुझती साँस तुम्हारे परस मिले फिर आयी,
मेरा अमर प्यार, मैं समझा, तुम्हें खींचकर लाया,
तुम कहती हो, ढूँढ़ रही थी मैं तुमको वन-वन में।

❀

२१

बीत चला पल-पल कर जीवन।

गीतों के रेशम तारों से,
प्यार-भरी मृदु मनुहारों से,
रहा बाँधता मैं जीवन-गति पर वे शिथिल हुये सब बन्धन।

मरु में मधु-रस-कन बरसाये,
नभ में सुन्दर सुमन खिलाये,
उस पर-पीर-हरी बदरी को आज उड़ा ले चला समीरन।

जीवन अमर, अमर है आशा,
धन्य दार्शनिक की परिभाषा,
पर जब यह पल हुआ न अपना, जाने क्या होगा भावी छिन।

झर-झर भर-भर जला विचारा,
टूट पड़ा नभ से वह तारा,
किसकी अमर याद में फिर भी बुझ-बुझ जल जाते ये लोचन।

मानव में इन्सान कहाँ था?
पाहन में भगवान कहाँ था?
मैं यद्यपि नर-नारायण कह करता चला अनवरत वन्दन।

*

२२

यह किसी का प्यार बेसुध, यह किसी का प्यार !

एक पल मुखरित नयन हैं दूसरे पल मौन,
पन्थ में पलकें बिछा कर पूछते हैं 'कौन' ?

अर्चना को गूँथते हैं मंजु मुक्ता-हार ।

सो गया चैतन्य नभ की सो गयी है साँस,
जागती है दग्ध उर में प्यास, सूनी आस ।

प्यास, तो भी चू पड़े हैं तुहिन-कण दो-चार ।

प्रिय, तुम्हारे चिर-प्रतीक्षित स्नेह का वरदान,
नयन में आँसू बना फिर ओठ में मुसकान,

और अब उतरा हृदय में ले उदधि का ज्वार

*

२३

फिर प्रलय की रात आली, फिर प्रलय की रात।

भोर के पल चार बीते जा रहे हैं,
स्नेह के घट व्यर्थ रीते जा रहे हैं,
छोड़ चल दोगी अरे निर्मम, अधूरी बात,
ये उठे रह जायँगे अभ्यर्थना के हाथ।

हैं नयन निर्झर कि जो रुकते नहीं हैं,
प्राण पागल शिशु तनिक चुपते नहीं हैं,
देख दृग पाये न जी भर कर सलोने गात,
और फिर चलने लगी आली विरह की बात।

याद है, उस दिन लिये उपहार को मधु पात्र,
एक कर में, दूसरे में रिक्त भिक्षा-पात्र
मैं चला बिकने तुम्हारी रूप-श्री की हाट,
मधु लुटा संचित, फिरा हतभाग्य सूनी वाट।

एक स्वर अवमानना ले, दूसरे आशीष,
चल रहा हूँ मैं नमित-लोचन, समुन्नत-शीश,
एक स्वर कहता निराशा, दूसरा विश्वास,
एक दृग जल-बिन्दु, दूजे में अचंचल हास।

रूठती आकुल निराशा, खोजता विश्वास,
चढ़ रहे जल-बिन्दु तुम पर, लुट रहा है हास,
तुम अभी तो पूछ भी पायीं न इतनी बात,
और फिर घिरने लगी आली प्रलय की रात।

है अभी वेला कि तजकर व्यर्थ की जग-रीत,
एक स्वर में मत्त गा लें दो प्रणय के गीत,
कौन जाने यह कटे, न कटे प्रलय की रात,
और फिर ऊगे, न ऊगे चेतना का प्रात।

२४

और खेलना था जीवन में एक नया नाटक अलबेला,
ओ मेरे भगवान, यही थी क्या तेरे अभिनय की वेला ?

टूटे पंख, बन्द थीं पलकें और दृगों में नींद समायी,
किन्तु कहाँ से तुमने सहसा यह मादक लाली बरसायी ?
निठुर चले क्यों थके परों में फिर भरने जीवन की आशा ?
मृतक शिराओं में घोली क्यों नवजीवन की मदिर पिपासा ?

झूम उठी पीपल की पाती, निर्मोही अब तुम्हीं सम्हालो,
जन्म दिया तो अब पागल की ये पगली ममतायें पालो ।

तुम कहती हो, वार करेंगे पर अन्तर में पीर न जागे,
तुम मचली हो, हम खींचेंगे किन्तु न टूटें कच्चे धागे,

भूख जगाकर स्वयं सामने रक्खी तुमने खाली थाली,
और पिलाने के पहले ही आप तोड़ दी मधु की प्याली।
किसने कहा कि तुम मेरे नयनों में सपना बन मुसकाओ,
किसने कहा कि तुम पीड़ा बन मेरे प्राणों में छा जाओ,

तुम क्या जानो दान कृपण, तुमने तो बूँद-बूँद जोड़ा है,
केश सजाने की आशा से ही पाटल का मन तोड़ा है।
तुमने दिया, तुम्हीं अब इस दुर्बल मन का पागलपन पालो,
जोड़े पंख नये, पंछी को अब गिरने से तुम्हीं सम्हालो।

यह मोहिनि, तसवीर दूसरे ही क्षण बदली, लाचारी है
किन्तु हमें तो जीवित से यह पत्थर की प्रतिमा प्यारी है।
यह न कभी रूठेगी, इसने तन में, मन में भेद न देखा,
यह न ठगेगी मर्यादा की खींच-खींच कर झूठी रेखा।

उमड़ा उर का रक्त तुम्हारे माथे बन सुहाग की रोली,
जलते मन की चिता, तुम्हारे बचपन की वासन्ती होली।
तुमने प्राण भरे अब जलती तुम्हीं अभागिन आशा देखो,
आग लगाकर दूर खड़ी देखो, अब तुम्हीं तमाशा देखो।

*

२५

आज रह-रह कर तुम्हारी आ रही है याद !
वह मदिर चितवन
कि जिसमें झूलते थे मुक्त सौ-सौ भाव !
शर्वती आँखें
कि इस पल खिल उठीं
हँस गयी बिजली
और पल में छा गयी बदली
कि झर झर झर उठीं।
झूमतीं अलकें

कि जो जाने अजाने ढुलक पड़तीं लोल
चूमने को आर्द्र वाम कपोल।
तुम कहो ये नाग
किन्तु तुलसी-सा विमुग्ध अनुराग
मान लेता रज्जु
चूमने अट्टालिका चढ़
मुग्ध 'रत्ना' का मनोज्ञ सुहाग।
चारु निर्मल हास
जो कि अधरों पर विछलता
जानता, पहचानता प्रिय की पग-ध्वनि
बाल्य-परिचित।
देख ली झाईं कि विखरा
औ' ठिठक पल में गया;
दृग ने कहा,
पगले न यों मदहोश हो होकर विखर।
और तन्वी कटि प्रतिक्षण भार से जो क्षीण,
भार ? कितना भार !
हृदय का, मस्तिष्क का, उभरे उरोजों का—
रूप-सर के अधखिले दो-दो सरोजों का।
और वे पायल,
कि उठते और गिरते उन उँगलियों के इशारे
जो सकुचतीं भूमि पर पड़तीं

न दुख जाये हिया भू का
युगों से मर्दिता भू का।

× × ×

है अमृत-वेला
कि सब जग सो रहा है।
बन्द हैं पलकें चराचर की,
उतरते सपने दृगों में,
किन्तु कोई जागता है
भ्रान्त नभचारी अकेला।
उठ रही है हूक उर में, उठ रही है पीर,
और टप-टप गिर रहा है मुक्त मुक्ता-नीर।
है अमृत-वेला
कि थक कर चल दिये सोने सितारे
स्तब्ध हैं व्यापार सारे।
झर रहे हैं किन्तु ये लोचन, अकेले जागते हैं।
लाख समझाओ मगर झँपते नहीं हैं
जोहते हैं बाट;
आ न जाओ तुम कहीं
छिपतीं छिपातीं
दीठ जन-जन की बचातीं
इस अँधेरी रात।

× × ×

जागतीं होगी प्रिये, तुम भी उधर।
पत्र का मर्मर,
दूर सागर से उठा विभ्रान्त नाविक स्वर
या मदिर मन्थर समीरण
प्राण में भर पुलक सिहरन
एक मादकता जगाता
और खो जाता,
अधूरा चित्र जी उठता दृगों में
बन्द हो जाते नशीले अधखुले
और आवेष्टित भुजायें झूलतीं प्रिय-कण्ठ
पड़ जातीं शिथिल।
हाथ उठते, पद खिसकते, नाचती पायल
और फिर खुलते निरुद्ध कपाट।
मौन व्याकुल-सी निरखतीं वाट
देर तक होगी प्रिये, फिर बन्द करतीं द्वार
हो कर उन्मना।

× × ×

चल रहीं घातें
खेलती हैं तारिकायें
कूजती हैं सारिकायें
और घर-घर स्नेह की बातें।
मुक्त वातायन,

कि मदमाता पवन
गा रहा गुन-गुन
प्रतिध्वनित सारी दिशायें
स्नेह की शपथें, सुरत के स्वन।

× × ×

दो घड़ी की देर
छूटेगा अँधेरा
और फिर होगा सवेरा
फिर चलेंगे विश्व के व्यापार
लोक के सब तन्त्र
यों निर्बाध जैसे यन्त्र ।
डूब जायेंगे जगत की व्यस्तता में
वेदना, नैराश्य के आँसू
किन्तु फिर भी शूल-सी प्रेयसि, तुम्हारी याद
रह-रह कर चुभेगी।
चीख उट्ठेंगे व्यथाकुल प्राण
खिंच उठेंगी सब शिरायें
निकल जायेगी अचानक आह, अवश कराह।
मन कहेगा, फेंक दूँ परिधान
औ' कह दूँ,
देख लो, ओ निर्ममो अपने अचूक प्रहार;
देख लो अपनी कृपा की चोट के ये दाग।

किन्तु ओठों पर रुकेगी आह
बन्द होंगे दृग, दृगों में नीर
और विधुरा पीर
चमक जायेगी हिये में चंचला सौदामिनी सी
कभी रह रह
फिर छिपेगी मौन।
यों अधर पर छद्ममय मुसकान
जिह्वा पर छुरी मधु की
ले चलूँगा मैं जगत के संग
मुग्ध होंगे माधुरी पर लोग वाणी की, क्रिया की
कह उठेंगे, धन्य कविताकार।
और सिसकेगी तुम्हारी याद
मन में, प्राण में।
और फिर दिन ढल चलेगा
सूर्य अस्ताचल चलेगा
बन्द होंगे दिवस के व्यापार, हलचल, व्यस्तता।
और आयेंगे पखेरू लौट निज-निज नीड
लौट आयेंगे पथिक घर
लौट आयेंगे सितारे
फिर चलेंगी प्यार की बातें
कथायें प्रेम की।
अलस अंकों में पड़ीं प्रिय के

शिथिल अप्सरियाँ दिलायेंगी सजन को याद
फिर बीती हुयीं बातें—
मधुरिमा से भरे वे क्षण
कि जब मधु की प्रथम बूदें झरीं
राका खिली
गाये मिलन के गीत निर्झर ने,
कि जब उतरा गगन से रश्मियों का जाल
बन कर नव प्रणय-बन्धन।
वे प्रथम चुम्बन, दृढ़ालिंगन
उठेंगे फिर दृगों में झूम
होगी मौन पुनरावृत्ति
कस लेंगी भुजायें फिर
उठेगा झूम सब संसार।
किन्तु एकाकी सितारा
विहँसते नभ से बिचारा
चू पड़ेगा, और भू पर नयन से दो बिन्दु
चू पड़ेंगे मौन
ओठ में फिर भी दबी रह जायगी फरियाद।
आज रह रह कर तुम्हारी आ रही है याद।

*

२६

कैसे उनको पास बुलाऊँ ?
सोये तारों के खोये स्वर कैसे बाँध बजाऊँ !

पल-पल कर लघु यौवन बीता
और मधुरिमा का घट रीता
रूठे शैशव-से सपनों को अब कैसे बहलाऊँ !

सजल स्वरित उर आकुल बादर
नीरव रीते नयन संग झर
रीते हाथ द्वार एकाकी पी-पी टेर सुनाऊँ ।

एक साँस इस पथ से जाती
एक साँस उस पथ से आती
पवन भुला लेती अधमग में कैसे पीर दिखाऊँ ?

❀

२७

मेरे मुरझाये मधुवन में ये गीत मदिर गाया न करो।
आयी पुरवा, लायी बदली चातक की सोयी साँस जगी,
निर्जन में फिर केका गूँजी, सीपी के उर में आस जगी,
मृदु अँगुलियों का स्पर्श-पुलक तरु की डाली-डाली सिहरी,
वह इठलाती बढ़ चली छोड़ नभ उर में रेखायें गहरी,
बदली के निष्ठुर गीतों को हँस-हँस स्वर पहनाया न करो।
किसके उर से बिखरी कि उषा के गालों पर लाली आयी,
किसकी आँखें चू उठीं कि रजनी अवगुण्ठन में मुसकायी,
किसके प्राणों का रस सूखा ये फूल गुलाबी मँहक उठे,
किसकी आशायें बुझीं कि जुगनू अनल-कणों से दहक उठे,
विधि की इस निष्ठुर कृति को तुम यों रह-रह दोहराया न करो।
पौ फटी कि मेरा मन हारिल प्राणों में हाहाकार लिये,
प्रिय के अनन्त साधन पथ में युग-युग का संचित प्यार लिये,
उड़ता उड़ता आकुल नभ के सूनेपन में खो जाता है,
रुई के फाहों-से बादल-खण्डों में जब सो जाता है,
तब मेरी सोयी साधों को झंझा बन सुलगाया न करो।

*

२८

सहज सुभग शृंगार करो तुम ।
नील निलय की नील निवासिनि, भूतल पर अभिसार करो तुम ।

द्वार-द्वार के दीप निवापित और तमो-रेखायें गहरीं,
यौवन के सपनों से अस्थिर किन्तु सजग अम्बर के प्रहरी,

मंद चरण छिप-छिप पलकों पर उतर सकल श्रम-ताप हरो तुम ।

बिखरीं खण्ड-खण्ड प्रतिमायें मन्दिर आज बना खँडहर है,
जीवन जलता पृष्ठ कि जिसका ध्वस्त व्यस्त अक्षर-अक्षर है,

पटाक्षेप कर हे रसरंगिनि, नव-विधान-विस्तार करो तुम ।

लघु सर एक, अनन्त लहरियाँ, क्षुब्ध-क्षुब्ध सर का अन्तर्मन,
लघु उर एक, अनन्त विकल स्मृतियों का पल-पल में आवर्तन,

अपने शीतल मदिर स्पर्श से चेतनता का भार हरो तुम।

आज प्रभंजन से कम्पित हैं, स्नेह-समर्पण की दीवारें,
और अमर विश्वास हिला है, सूख चलीं मधु-रस की धारें,

अब नीरस आख्यान बन चला इसका उपसंहार करो तुम।

कब तक ठहरे ज्योति दीप बुझ चला और धूमिल है बाती,
घूम रही है सूनेपन में एक करुण ध्वनि-सी टकराती,

युग-युग से रीते अन्तर में आज हृदय भर प्यार भरो तुम।

कैसा शीतल अंक कि जिसमें तम प्रकाश शिशु-सम पलते हैं,
औ' वट जिसकी डाल-डाल पर जन्म-मरण समरस फलते हैं,

आज हिरण्मय पात्र हटाकर स्वप्न-सत्य साकार करो तुम।

❀

२६

मेरी सूखी आशाओं में अब फिर बहार आये तो क्या ?
असमय सूखे जीवन सर में यौवन फिर लहराये तो क्या ?

जिस हरियाली फुलवारी ने ये हत्यारे निःश्वास छुये,
उसके वसन्त-सुरभित पादप झर-झर कंकाल पलाश हुये।
जीवन का पहला स्पर्श-पुलक नस-नस में शूल बना कसका,
जब प्रथम प्रणय-परिरम्भण ही उत्पल पर पावक बन बरसा

तब इस मुरझाये मधुवन में केकी मल्हार गाये तो क्या ?
मेरी सूखी आशाओं में अब फिर बहार आये तो क्या ?

वह लघु लहरी बनती मिटती मन में अनुराग अगाध लिये,
अपवर्ग स्वर्ग के दामों पर प्रिय-आलिंगन की साध लिये,
तट-अधर चूमने चली शरद-राका ने आँचल थाम लिया,
पर हाय, वायु के झोंके ने टकरा जीवन-अवसान किया।

सागर-तट पर अब कल्प कल्प राका यदि मुसकाये तो क्या ?
मेरी सूखी आशाओं में अब फिर बहार आये तो क्या ?

वह कौन बटोही उदासीन रुकता है फिर चल देता है,
एकाकी उठता है कराह, जग हँसता है, हँस देता है,
पागल ! उसके पथ का न अन्त, पागल की कैसी करुण कथा,
नयनों में झाँक गया पल भर रो पड़ी सुप्त मानिनी व्यथा !

अब जग उस जूठी पीड़ा को युग-युग तक दोहराये तो क्या ?
मेरी सूखी आशाओं में अब फिर बहार आये तो क्या ?

तुम किन घड़ियों में वे जाने लाली बन नयनों में आयीं,
चुपचाप हृदय के शून्य गगन पर इन्द्र-धनुष बन कर छायीं !
पल भर की आँख मिचौनी थी जो एक अमिट स्मृति छोड़ गयी,
अपनी गति जाते निर्झर का पथ वाम दिशा में मोड़ गयी,

क्षत-विक्षत उर-निर्झर अब फिर कल-कल स्वर में गाये तो क्या ?
मेरी टूटी आशाओं में अब फिर बहार आये तो क्या ?

तुम एक अग्नि बन जला करो मेरे तन-मन में, जीवन में,
मेरी साँसों में बस जाओ प्रेयसि, अन्तर की धड़कन में,
मैं कण-कण में तुम को ढूँढ़ूँ तुम मुझ में छिप-छिप मुसकाओ,
मेरी राका मेरे मन में तुम आज अमा बन छिप जाओ।

भूखे पंछी-सा वधिक विश्व मेरे सिर मँडराये तो क्या ?
मेरी सूखी आशाओं में अब फिर बहार आये तो क्या ?

३०

क्या पूजा, क्या ध्यान करूँ मैं ?
सब भूली प्रिय-स्नेह-सलिल में
प्रतिपल प्रतिछन स्नान करूँ मैं।

मैं बैठूँ ढलती वेला सखि,
उनकी छवि का चित्र बनाने,
किन्तु उतर आती है पट पर
मेरी ही मूरत अनजाने।

और रात भर जग-जग भीगी
आँखों व्यर्थ विहान करूँ मैं ?

आँचल में भर लिये बूँद यदि
कभी उतर पलकों से आये,
कण्ठ-फूटते बोल मींड दे
देकर मोहक गीत बनाये।

अश्रु हास में भेद मिट गया
क्या रोऊँ, क्या गान करूँ मैं?

अध-बेसुधे क्षणों बरबस जब,
नाम छलक अधरों तक आया,
पलक चूम आतुर-सा प्रिय को
तब तब खड़ा पार्श्व में पाया।

विरह सतत-संयोग बन गया
भूलूँ क्या आह्वान करूँ मैं?

❀

३१

गान कैसा ?

स्मितमयी मधु-पूर्णिमा में करुण-स्वर-संधान कैसा ?

चल रहीं साँसें कि चलती आ रही हैं,
मोम-सी आसें पिघलती जा रही हैं,
प्रात तुम समझो न यदि छाया अँधेरा,
रात तुम कह दो न यदि आया सवेरा।

काल-रज्जु कटी कि पथ भासित हुआ है,
खुल गये दृग साँझ और विहान कैसा ?

काटता पल-पल विकट बढ़ता अँधेरा,
द्वार पर जलता रहा प्रभु-पद-चितेरा,
रात भीगी, ढल गयी, खोये सितारे,
किन्तु अपलक जागता है दीप मेरा।

किरन पग चूमे कि रवि-रथ चढ़ चले वह,
दे दिया अस्तित्व मान अमान कैसा ?

दे रहे गल-बाँह करुण सिंगार दोनों,
एक हैं वरदान और गुहार दोनों,
कौन हैं प्रभु, कौन पूजक कौन जाने,
हो गयीं जब मूर्ति एकाकार दोनों।

आज सीमाहीन लघुता हो गयी है,
वन्दना कैसी कि पूजा-ध्यान कैसा ?

❀

३२

तुम्हारी सावनी आँखों गगन में फूल खिलते हैं,
तुम्हारे मौन स्वर में स्वर्ग के संकेत पलते हैं।
तुम्हारे प्राण की बाती स्वयं गल गल, अथक जल जल,
किया करती विभासित यामिनीं में पन्थ के जल-थल।
तुम्हारी प्रेरणा की ताल पर उठते, चरण गिरते,
धरा पर छोड़ते रेखा जिसे जन युग-सरणि कहते।
तुम्हारे स्नेह की साँसों सधे ये गीत बहते हैं,
जगत कहता जिसे पागल उसे ये मीत कहते हैं।
तुम्हीं से फूटते, विश्राम पाते हैं तुम्हीं में स्वर,
तुम्हारी ज्योति से इस पिण्ड का प्रत्येक कण भास्वर,
मुझे वह ज्योति दो तुमको जहाँ चाहूँ वहाँ पाऊँ,
तुम्हारे ध्यान में जागूँ, इसी में अन्त सो जाऊँ।
दृगों की डोर पर झूलो, जुही-सी प्राण पर फूलो,
अमृत बन जाय हालाहल दृगों की कोर से छूलो,
तुम्हारे सामने ही मृत्यु का संदेश आ जाये,
दृगों में बस तुम्हारी ही खिंची तसवीर रह जाये।

३३

कैसे पावन प्यार भुलाऊँ ?

प्राण, तुम्हारे प्रणय-स्वरों को युग-युग तक दोहराऊँ।

माना, वह नन्हाँ-सा क्षण था,
फिर भी झूम उठा तन मन था।

लघु पल के उस मिलन-सिन्धु में जीवन-विरह बहाऊँ।

वह घन - विद्युत-सी पथ - भूली,
मधुर मधुर अधरों पर झूली।

तरल हँसी के सुधा-स्रोत में अग-जग को नहलाऊँ।

मृदुल चरण-छवि उर-पट अंकित,
चूम चूम प्रिय स्नेहालोकित।

थपकी दे मृदु मृदु गीतों से रूठा स्नेह मनाऊँ।

रैन अँधेरी झिलमिल तारे,
सोये नभ में स्वर बेचारे।

रह रह पत्रों के मर्मर में पगध्वनि सुन उठ धाऊँ।

❀

३४

अर्चना के दीप हो, जलते रहो।

तुम प्रणय-साक्षी न दम्पति के सुभग,
द्वार के प्रहरी न पथ-शृंगार हो;
तुम किसी की मूक श्रद्धा से ज्वलित
अर्पणा के ज्योतिमय अवतार हो।
यों गलो तिल तिल न गल गलकर बुझो,
पुण्य मन्दिर के प्रवात प्रदेश में
तुम सतत अवबुद्ध चेतन, उर-अजिर
कर विभासित तम-निकर छलते रहो।

*

उर-अवनि से उठ अवश उच्छ्वास ज्यों,
शून्य में अंगार बन छाओ न यों।
बन उपल बरसो न, नित पीयूषमय
धार से झरते रहो, रीतो न यों।
तुम प्रशस्ति न मान या मनुहार हो,
तुम किसी की भावना साकार हो।
वेदना के दोल पर झूलो, खिलो,
स्निग्ध-शिशु से प्राण में पलते रहो,
वन्दना के फूल हो खिलते रहो।

पल, प्रहर, दिन, मास, वर्ष, शताब्दियाँ
नापती, आयें दिशाओं की गली,
तुम क्षितिज-सम दूर, गौरव-शृंग बन,
बस नयन-पथ में न यों दुर्गम रहो।
तुम न आकुल वासना की पूर्ति हो,
तुम न पाषाणी प्रतिच्छवि मौन की।
तुम किसी के प्यार की मंजिल मधुर,
तुम किसी की साधना के सार हो।
श्रान्त चरणों में त्वरा भरते रहो,
साधना के स्रोत हो, झरते रहो।

*

२५

आज गगन में बादल छाये।

ये भू के उच्छ्‌वास उठे अम्बर का अन्तर छूने,
किन्तु व्योम उर में पीड़ा बन दूख उठे हैं दूने।

कसके फिर मेरे मन में प्रिय सूखे दुख हरियाये।

मन्द्र मुरज ले घन गायक ने सुरति रागिनी फूँकी,
कण्ठ खोल उड़ चली चातकी मुग्ध मयूरी कूकी।

वन-बाला के अंग अंग पर स्नेहांकुर उठ आये।

भरे भरे से नयन बावरे, भरे भरे स्वर आते,
विहँस विहँस घन के परदों में मेरे प्रिय छिप जाते।

बरस पड़ो मेरे अन्तर में हे मेरे मनभाये।

❀

३६

सखी री वह पूनम की रात।
नभ से झरे फुहारे मधु के भीग गये सब गात।

झिप झिप से जाते थे तारे,
किसी असीम सकुच के मारे,

पुलक भरी थी धरा किसी के मधुर हास से स्नात।

खेल रहीं किरणें सर-जल से,
चौंक चौंक पड़ते पागल से,

किसी स्पर्श की मदिर प्रतीक्षा में तरु-तरु के पात।

तब न प्राण थे अपने बस में,
डूब गये बन्धन मधुरस में,

फूल उठा मेरे जीवन का कुम्हलाया जलजात।

आज रात फिर खिली जुन्हाई,
मन में छबि-पूरनिमा छायी,

बरस रहे आँसू अम्बर से सिसक रही मधु वात।
सखी री यह पूनम की रात।

३७

बड़ी सुबह धरती पर उतरी तारों की बारात है,
हर्ष-पुलक में अब तक डूबा-डूबा नभ का गात है।

खोयी खोयी उषा आज अपने सुहाग-शृंगार में,
दिव-दुहिता बन रही वधूटी प्राची के आगार में,
फूटे मंगलगान कि डोली बालारुण की आ गयी,
प्रथम प्रणय की कली धूप के छूते ही शरमा गयी।

क्यों पीला पड़ चला चांदनी का चटकीला गात है?

वह अनंग-रानी झुरमुट से क्या सन्देश सुना गयी ?
अमराई की डाल-डाल पर नयी जवानी आ गयी !
हरी वल्लरी की बाहों में आलिंगन की आस है,
और मधुकरी के ओठों पर छलकी-छलकी प्यास है,

कली-कली पर भाँवर लेता अब वासन्ती वात है।

पहला अंकुर उगा प्यार का इधर वकुल की छाँह में,
सेमर और पलाश जल उठे उधर किसी की चाह में,
सरसों के पीले पट में, अलसी के नीले हार में,
किसका स्नेह मुखर अरहर की पायल के झंकार में ?

किस सुहाग से वन-उपवन का पत्ता-पत्ता स्नात है ?

पीला 'कल' झर गया 'आज' के गालों चढ़ा गुलाल है,
नयी उमंगों, नये उछाहों ने पहनी वरमाल है,
बाँध सकेगा कौन भला इस पागल-प्राण समीर को ?
रोक सका है कौन पंचसायक के छूटे तीर को ?

जड़ में भी जीवन भरता मधु-ऋतु का प्रथम प्रभात है।

❀

३८

शंख-ध्वनि हो उठी, उठा फिर सत्याग्रह का नारा,
भरत-खण्ड हिल उठा समूचा ज्यों 'थारा पर पारा'।
एक हाथ करवाल, दूसरे कलम, हिये मन चाही,
'सिर में लगन, नेत्र में मस्ती' लेकर चला सिपाही।

'बल में, वलि में' वलिपथ ही बस तुझे सुहाना दीखा
'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया' का अजमाना सीखा
'आँखें नीचीं, मस्तक ऊँचा' सिर दे रक्खा पानी
अभी बुढ़ापे की बन्दी है रंगों-भरी जवानी

प्रभु-मन्दिर में मोम-दीप-सा तिल-तिल जलते जाना,
फूलों से बच-बच कर चलना 'सूली पर हरियाना'।
'कुञ्ज कुटीरे यमुना तीरे' गाना मधुरी वानी,
आँसू पी वरदान बाँटना, तेरी एक कहानी।

तेरे अक्षत पुष्प समेटे कितने बने पुजारी,
यह तेरा जादू, कृत्या ने तेरी जय उच्चारी।
तेरा ही अनुराग कि रूखे ओठों चढ़ी ललाई,
तेरा ही संकेत कि बलि-पथ पर उमड़ी तरुणाई।

आज सिन्धु बन लहराया है तेरे दृग का पानी,
तेरे प्रभु के पीताम्बर-सी तेरी उड़ी निशानी।
तेरी हाँकों से अन्यायी का सिंहासन डोला,
रे साधक, तेरी वाणी में स्वयं देवता बोला।

जयकारों के बीच न जिसको जीवन की जय दीखी,
स्वर्ण-धूलि से ढँककर जिसकी पड़ी न आभा फीकी।
बोले अपने बोल न जिसने युग के स्वर दोहराये,
स्मित के मृदु आँचल से जिसने 'ही' के घाव छिपाये।

तेरी ही समशील, अलज बाहर भीतर शरमीली,
तेरे ही चरणों पहले यह झुकी कलम गरबीली।

इसे दे ऐसा आशिर्वाद कि तेरा ही पथ वरती चले,
शम्भु-सी पिये हलाहल, और इन्दु-सी शीतल झरती चले।

('एक भारतीय आत्मा' की हीरक जयन्ती के अवसर पर)

❀

३६

महाक्रान्ति के अग्रदूत, हे विश्व-शान्ति के वर सेनानी—
गूँज चुकी है अन्तरिक्ष तक वज्र-घोष-सी तेरी वाणी।
काँपी बर्बरता की दुनियाँ, काँप उठी दर्शन की भाषा,
आज बदलने चले वीर जब तुम मानवता की परिभाषा।
नाच रही जग के आँगन में प्राची के प्रभात की लाली,
तेरे प्राणों में मुसकायी वर्षा की काली जलदाली।
आज घात को उठीं, अंक भर कल भेंटेंगी तुझे भुजायें,
झिझक न, कृत्या जननेवाली आहुति देंगी तुझे ऋचायें।
नियति, व्यक्ति, विश्वासवाद का विष फैला मानव-जीवन में,
नाना नाम-रूप धर शोषण विचर रहा भू के प्रांगण में।
वीर, परीक्षा की घड़ियाँ हैं, झंझा की अन्तिम झकझोरें,
और सवेरे बन जायेंगी ये सागर में मृदुल हिलोरें।
साथी, विजय-यान की वेला चरण चूमने चला किनारा,
देखो तुम्हें सहेज रहा है एकाकी नभ में ध्रुव तारा।

❀

४०

कौन चलीं तूलिका तोड़ तुम मेरा बनता चित्र मिटाने,
मेरी मानवती कविता से अपनी चरण-धूलि धुलवाने?
सच, तुम रूप रूप की रानी, सच, तुम वेद वेद की वाणी;
सच, यह मिट्टी का लघु मन्दिर तुमसे ही ज्योतित कल्याणी।

किन्तु आज तो देवि तुम्हें भी सिंहासन तज आना होगा,
जन-गण जय, जन-मन जय जय के घोषों को दोहराना होगा।
युग-युग की दासता उठी है आजादी को मुकुट पिन्हाने,
लो काराओं का बन्दी भी तोड़ चले जय-पर्व मनाने।

जन-जागृति के चरण-तले दम तोड़ चुका है बर्बर शासन,
नामशेष हो गया क्षणों में सर्व-विश्व-ग्रासी सिंहासन।
अब अपने खलिहान खेत हैं, अपनी ध्वज, अपनी ही भाषा,
मुक्त पींजड़े की मैना-सी कुहक उठी मन-मन अभिलाषा।

अब अपनी गंगा जमुना हैं, अपने विन्ध्य, द्वारिका, काशी,
अब न रहेंगे हम अपने ही घर में बन-बनकर वनवासी।
आओ आज हँसें, खुल खेलें, नाचें, गायें, हर्ष मनायें,
अपनी स्वतन्त्रता के दीपक से जग का तम-तोम मिटायें।

अम्बर से देवता आज छिप-छिप भू पर अभिसार करेंगे,
चिर रूठे वरदान, स्वयं आँचल फैला फैला उतरेंगे।
अब न पड़ेंगे अमरपुरी को कोटि-कोटि दीपक दिखलाने,
आर्यावर्त चला है नव मानवता की शुभ ज्योति जलाने।

किन्तु विजय के पुण्य प्रहर में किस परदेसी की सुधि आयी,
आज हर्ष-वेला में किसकी स्मृति दृग में आँसू बन छायी?
अमर शहीदों की छाया है, यह उन वीरों की स्मृति प्यारी,
जिनके उष्ण रक्त ने सींची यह आजादी की फुलवारी।

आज प्रथम उनको वन्दन हो, आज प्रथम उनका पूजन हो,
उनके स्मृति-कण-कण को रूपसि, अपना शत शत वार नमन हो।

(भारतीय स्वतन्त्रता के स्मृति-पर्व पर)

❀

४१

कोलाहल मच गया बधिक की भौंहों में बल आया,
पिंजरे तोड़ चला दीवाना एक शेरनी-जाया।
दुश्मन खड़ा रहा छाती पर खूनी खंजर ताने,
किन्तु वीर बढ़ चला अकेला नव इतिहास बनाने।

तुझे देख कर चमक उठा माता का मस्तक-टीका,
और शत्रु के मुँह का मंगल लगा दीखने फीका।
तेरा भैरव नाद कि सोया शेरों का बल जागा,
फिर जुड़ गया शत्रु-खंडित दृढ़ बन्धु-प्रम का धागा।

जय हिन्दी, जय हिन्द लगा आजाद फौज का नारा,
कूल तोड़ कर चली उमड़ने ब्रह्मपुत्र की धारा।
अपनी छिनी हुयी दिल्ली को फिर आजाद बनाने,
उमड़ चली दल-बादल सेना विजय-केतु फहराने।

माताओं से पूत, पत्नि से पति, भगिनी से भाई,
मातृ-भूमि के हेतु मुक्त-मन ले ले चले बिदाई।
युवक चले, युवतियाँ चलीं, फिर बूढ़ों में बल आया,
जब वानर-सेना ने आगे बढ़ भू-डोल मचाया।

नव वसन्त के मदिर वात से विकसीं कोमल कलियाँ,
फिर टूटे आजादी के घर जागीं दीपावलियाँ।

× × ×

तेरा अन्तर्धान लगे ये ग्राम-सिंह मँडराने,
आजादी का मोल माँग शेरों को आँख दिखाने।
आजादी का मोल शीश, उसने कब झुकना जाना?
वह देखो, फिर लगा गूँजने रण-चण्डी का गाना।

जन-गण-मन में गूँज उठी है तेरी पावन वाणी,
वीरों का आदर्श बनी है तेरी अमर कहानी।
जय आजाद हिन्द सेनानी, जय तेरा जयनाद,
तेरी कुर्बानी से निर्मित स्वतन्त्रता-प्रासाद।

तेरी स्फूर्ति कि अब भारत का हर बच्चा जाँबाज़,
घर घर में उपजेंगे ढिल्लन, सहगल, शाहनवाज़।
श्रद्धानत तेरे चरणों में वीर, हमारा माथा,
आत्म-रक्त से देश लिखेगा तेरी जीवन-गाथा।

(नेताजी सुभासचन्द्र बोस की श्राद्धतिथि पर)

❀

४२

छू नहीं पायी जिसे पहली किरन
भी कभी मधु के सुनहले प्रात की,
और खुल कर एक पल भी जिस कली
ने न प्रियतम से प्रणय की बात की,

जो बिखर, गल, खाद बनकर दे गयी
डाल के हर फूल को जीवन नया,
आज पूजा की घड़ी हर फूल की
उस कली को मुक्त सौ-सौ वन्दना।

जूझता तिल-तिल तमस से द्वार पर
दीप जो जलता रहा आकुल-नयन,
रात के अन्तिम पहर जो बुझ चला
शून्य में धूमिल व्यथित उच्छ्वास भर

और ऊषा की रँगीली रश्मियाँ
धो नहीं पायीं कभी जिसके चरण,
आज घर घर में ज्वलित हर दीप की
द्वार के उस दीप को शत वन्दना।

क्षुब्ध मानस के चुटीले तीर से
आह जो उमड़ी, उमड़कर खो गयी,
बूँद बन बरसी दृगों की सीप में
और स्नेह-समाधि बनकर सो गयी।

जो न चाहक के कभी चरणों चढ़ी
कण्ठ का शृंगार बन छायी न जो
प्रार्थना के इन पलों हर गीत की
उस अवश उच्छ्वास को शत वन्दना।

अन्ध वीहड़ में प्रथम जिसका चरण-
चिह्न शाश्वत पन्थ वलि का बन गया

और आहुति पर चढ़ा जिसका प्रथम
रक्त-बिन्दु सुहाग-टीका बन गया।

छू नहीं पायी जिसे इतिहास के
लोक के आलोक की कोई किरन,
उस पथी की पावनी पग-धूलि को
हर पथी की आज शत शत वन्दना।

(जनतन्त्र-स्थापना-स्मृति-पर्व पर)

❀

हे चिर-प्रशान्त, हे चिर-महान !

तुम निज करुणा-घन से प्रशमित कर गये धरा के तप्त प्राण ।

तुम मुक्त-रूप, तुम सत्य-दूत,
तुम वीत-काम, तप-पुण्य-पूत,
तुम पथ-भूली मानवता को दे गये नया पथ-दिशा-ज्ञान ।

ये धर्म - ध्यान - धन - सम्प्रदाय,
बन गये लोक-गति-अन्तराय,
भर गये जीर्ण भव-संस्कृति में तब नया रक्त औ' नये प्राण ।

तुम ने जागृति का दिया मंत्र,
उतरा जग-आँगन में वसन्त,
गुञ्जरित विश्व के कण-कण में है देव, तुम्हारा सामगान ।

तुम राम-नाम-आवास सुघर,
तुम जीवन के विश्वास अमर,
हे नील-कण्ठ तुमने जन हित कर लिया अमृत दे गरल पान ।
हे-युग नायक, युग-युग-महान ।

(बापू की श्राद्ध-तिथि पर)

४४

वज्रपात !

वज्रपात दारुण हे !

दारुण हे महानाश !

दारुण भैरव विनाश

डोल रहा शीश शीश,

बोल रहा पीस पीस भैरव दंष्ट्रा कराल

रक्त, रक्त, उष्ण रक्त !

मासों से, कि वर्षों से, कि युगों से, शताब्दियों से

पीता आ रहा है,

तो भी बुझती नहीं है प्यास।
देखो रे, देखो रे घूमता है महाकाल !
शिवि हों, दधीचि हों कि दार्शनिक सुकरात,
मनसूर हों कि खुद ईश-पुत्र ईसा हों
रुकता नहीं है यह,
झुकता नहीं है यह,
शोणित की माँग है,
शोणित की माँग है।
गूँज उठा अम्बर है,
कैसा भयंकर है ?
सम्हलो रे, सम्हलो रे !
देखो वह आ गया,
अवनी पर छा गया।
कैसा परपंची है
मानव का भेष धरे पैठ गया मानवों में।
अरे इसे रोको तो,
कोई इसे टोको तो,
देखो मुँह खोल रहा,
बद्ध मुष्टि तोल रहा !
किधर प्रहार किया ?
किस पर वार किया ?
अरे नहीं मानव यह,

वह महामानव है।
यह अतिमानव है,
धर्म द्युतिमान है,
नहीं नहीं,
मानव का भेष धरे यह भगवान है।
क्रूर यह क्या किया ?
रक्त किसका पिया ?
पच नहीं पायेगा,
फूट फूट आयेगा।
देख तो,
काल की, दिशाओं की, शरीर की, कि प्राण की
भित्तियों को छेदकर
सौर लोक भेद कर
देख वह आ गया,
अवनी पर छा गया।
अस्थि, मांस, शोणित के नागपाश तोड़ कर,
आधियों की, व्याधियों की ग्रीवायें मरोड़ कर

देख वह जी उठा।
खिल उठा कण कण में
बोल उठा मन मन में।
गांधी मरता नहीं,
गांधी डरता नहीं,

गांधी तो प्रतीक है मनुष्यता का, संस्कृति का,
मानव के मन की निवासी सुर-शक्ति का,
सत्य, शिव, सुन्दर का।
गान्धी अजरामर है
गान्धी अविनश्वर है।

× × ×

किन्तु नभ रोता है,
धैर्य जग खोता है।
वेदना के बादलों ने आशा के नखत सब
एक-एक लील लिये।
दारुण है अन्धकार
दारुण पीड़ा-प्रसार
ओर नहीं, छोर नहीं
इस ओर, उस ओर, इस ठौर, उस ठौर
आँसू, बस आँसू हैं।
काम सब रुक गये,
झण्डे सब झुक गये,
घोर शोर हो उठा,
कण्ठ कण्ठ रो उठा।

× × ×

किन्तु यह पीडा नहीं,
भीरुता या व्रीडा नहीं,
अरे यह श्रद्धा है!

आँसू नहीं, पूजन के हेतु यह जल है,
जीवन के पथ का पुनीत सम्बल है।
कौन कहता है आज मानवता भीता है ?
सौंप गया गांधी इसे कर्म-भरी गीता है,
हम नहीं भीरु आज हम न अधीर हैं
गाण्डीव और कर लक्ष्य-भेदी तीर हैं।
क्षण भर का ही मोह लायी यह आँधी है
किन्तु साथ गांधी है।
गांधी अनिश्वर है
गांधी तो अमर है।

× × ×

माना, यह सत्य है—
भारतीय संस्कृति के शुभ्र इतिहास में
जुड़ गया काला पृष्ठ।
शुभ्र चित्रपट पर धब्बा है
सचमुच है निकृष्ट।
कट न सकेगा यह,
फट न सकेगा यह।
किन्तु हम बैठें क्यों ?
क्रोध मान ऐंठे क्यों ?
क्रोध के अनल पर क्षमा-जल डाल दें,
भूल से उठा जो पग उसको सम्हाल दें।
बापू ने सिखाया है,

हमको बताया है,
असुर को सुर में बदल डालो
कल्मष को धो डालो ।
मन को टटोलो तो
और फिर बोलो तो
तुम में भी छिपकर
बैठा तो न दानव है,
बनकर मानव है ।
व्यर्थ ही न जाय महामानव का बलिदान,
हिन्दू औ' मुसलमान
मानव हैं सब एक मानव की सन्तान ।
भेद अरे ये तो सब हमने बना लिये ।
उठो, उठो, आगे बढ़ो
सीना चीर पत्थरों का ब्रह्मपुत्र के समान
कल कल गीत से
जग को गुँजा दो,
प्रेम रस बरसा दो ।
एक भावना पुनीता हो
हाथ चारु गीता हो,
गांधी अविश्वर है,
गांधी तो अमर है ।

(बापू की स्मृति में)

❀

४५

बीत गया एक वर्ष ।
आज घर-घर हर्ष,
पुण्य पर्व, उत्कर्ष ।
बीत गता वर्ष एक,
वर्ष एक अन्धड़ का,
आँधी का, बवण्डर का,
पावस-प्रलय का,
काल-समुदय का ।

वर्ष एक बीत चुका,

काल-घट रीत चुका।

डूब उठी धरा तप्त

बहा अविराम रक्त

बिस्मिल के बन्धु, अशफाक के बिरादर का,

पीड़ित का, शोषित का

पूँजी-पति साम्प्रदायिकों के बलि-पशु का,

दुर्दैव पोषित का।

लक्ष्य एक—

राम के, मुहम्मद के, वेद के, कुरान के

गूँज उठें घोष, उद्घोष दिग दिग में।

लिप्सा आसुरी सुरम्य वृत परिधान में

संस्कृति के, सभ्यता के करती थी अट्टहास।

फिर भी बुझी न प्यास,

झोंक दिया राष्ट्र-मेध-ऋत्विक का हाय, मुण्ड

चीख उठा यज्ञकुण्ड।

'इन्द्र शत्रुर्वर्धस्व' का-सा अनुदात्त स्वर

उलट गया औ' बना राक्षस ज्यों साक्षर।

दिल्ली का विशाल क्षेत्र

जिसमें विराजता था मेरु-सा, मुकुट-सा
तथागत बोधिसत्व,
गूँजता था जयकार
जैसे अनाहद में ररंकार।
भारत के भाग्य का विधाता जहाँ
लिखने चला था अंक कोटि, कोटि भाल पर,
लिखा वहीं इतिहास,
निस्सहगी औ' उदास
शासन की लेखनी ने फिर अबसाद का।
हाय, वह अवसाद!
और विधि-विशेषज्ञों की सुचिर वक्र-वाद!

× × ×

बीत गया एक वर्ष
भारत के भाल पर खींच कालिमा की रेख
और अब सुप्रभात
विहँस उठे हैं नभ-भूमि-तल अवदात
दूर हुयी करका
टूट गयीं यंत्रणा की कड़ियाँ
बीत चुकीं भैरवी विभीषिका की घड़ियाँ।

किल्विष का आत्म-घात

और अब सुप्रभात

डोल रही डाल-डाल मन्द मन्द मंजु वात

दिक दिक में प्रकाश

अनुराग-रंजित-सा भारत का भाग्याकाश।

मंगल-विधान

मुक्त धरा, मुक्त प्राण

घर घर जय-गीत

बेणु वल्लकी प्रगीत

आओ हम षट त्रिंशकोटि स्वर में मिला दें स्वर,

गूँज उठे अम्बर,

समानी व आकूति ; समाना हृदयानि व :—

समानमस्तु वो मनो यथैवं सुसहासति।

(स्वतन्त्रता-दिवस पर)

❀

४६

हो गया प्रभात,
और मन्द मन्द वात
रही डाल-डाल डोल।
प्राची का रक्तपुता गात
हेम-स्नात,
हुआ उज्वल अवदात।
दिनमणि ले कोटि कर
पवन-रज्जु पर पग धर
पोंछ गया अश्रु-विन्दु

ऊर्ध्वमुखी अल्हड़ कुमारियों के
छाया में जो संकुचित,
निम्न-मुखी, श्रद्धानत।
आशा से बाल-विहग
जाग उठे कर कलरव,
नीड-नीड पुंज पुंज
कुंज-कुंज डोल।
मुक्त धरा, मुक्त गगन,
आलोकित वन, उपवन।
ग्राम-ग्राम, नगर-नगर
चेतना का चर्चितस्वर,
किल्विष का आत्मघात।
फूट पड़ी कण्ठ-कण्ठ वन्दना
वेद-मंत्र, श्रद्धाहुति, अर्चना,
सिद्ध हुई युग-युग की साधना।

× × ×

खोज रहे प्रतिपथ दृग
अन्तर्हित क्यों ऋत्विग्?
हो चुकी है पूर्णाहुति
किन्तु शेष साम-गान,
अध्वर के विधि-विधान।
शुक, पिक, खग लक्ष-लक्ष

कूज रहे जहाँ
ऋत्विक रे कहाँ, कहाँ ? ऋत्विक रे कहाँ, कहाँ ?

× × ×

अरे कौन ? दिव्य घोष ?
क्या कहा कि ऋत्विक ने
होम दिये आत्म-प्राण ?
वैश्वानर कर समिद्ध
राष्ट्र-सूय ऋद्ध-सिद्ध ?
ऋत्विक की आत्मवलि
महापाप, लाञ्छन है !
कालिमा है राष्ट्र के वदन पर ।
भाग्यनभ धूमकेतु
महत अशुभ-हेतु
उदय हुआ था
जिसे करने को प्रशमित
'सर्वभूत-हिते रत'
ऋत्विग ने
झोंक दिये निज प्राण ।
ऋत्विक-तप-तेज विमल
आभा बन बन शीतल
व्याप्त हुआ अग, जग, थल,
द्योतित है भूमण्डल

आलोकित नभ-मण्डल

× × ×

साँझ हुयी और अब जागरण रात्रि-सत्र,
विजयोत्सव
सज्जित पावन हवित्र।
झूमते हैं द्वार-द्वार
तोरण वन्दनवार।
बालायें आँगन लीप
गा रहीं विजय-गीत।
जाग उठे सान्ध्य-गीत
शोभित मंगलघट
उड़ रहे ध्वजपट
घर-घर स्वस्ति-पाठ।
वैश्वानर है समिद्ध,
आंच ऊर्ध्वमुख वृद्ध,
उच्चरित है सामगान
और अवभृथ स्नान।
किन्तु कवि-कण्ठ रुद्ध,
व्याकुल से स्वस्ति-गीत
प्राणों में, कम्पित कर,
गीले दृग ढूँढ़ते हैं
साम उद्गाता कहाँ?

मुक्ति-वर-दाता कहाँ ?

× × ×

भीग उठी रात,
भीग उठे तरु-पात
गीले गीले नभ-नैन
गीले गील कवि-वैन,
वेणु वल्लकी प्रगीत,
मुक्त कण्ठ, स्वर स्फीत,
मोद मंगल विधान,
मुग्ध धरा, मत्तप्राण
किन्तु कोटि रव चीर,
बेधता है बन तीर
एक प्रश्न बार बार
गूँजता है जहाँ तहाँ,
साम-उद्गाता कहाँ ?
मुक्ति-वर-दाता कहाँ ?

*

४७

बापू एक प्रकाश कि जिसने सोये युग के प्राण जगाये,
बापू एक प्रभात कि जिसपर डाल-डाल ने फूल चढ़ाये।
एक कृती जिसने माटी की प्रतिमाओं को दे दी भाषा,
और घोल दी जड़, जर्जर प्राणों में नव-जीवन अभिलाषा।
उसने भूत और भावी के कन्धों चढ़ अपना रथ हाँका,
रवि-शशि के पथ से टकरायी उसकी उज्वल कीर्ति-पताका।
बोल दिया सो वेद और पद-न्यास कि तीर्थ-स्थान बन गया,
हर उठाव उसके जीवन का मानव को सोपान बन गया।
उसकी कृतियों में छिप-छिप कर ईश्वर की अभिलाषा बोली,

उसने अपने वरदानों से भरी विश्व की खाली झोली।
उसने जीवन जिया, मरण से भी उसने जीवन आराधा,
उसकी साँस-साँस ने ढलता मानवता का सूरज साधा॥

S S S

हमने उस आलोक-पुंज को एक बार विस्मित हो देखा,
और खींचली उसके अपने बीच एक मोटी सी रेखा।
उसके छुपे चरण, उसपर जयजयकारों के हार चढ़ाये,
उसके स्वागत को अपने द्वारों पर सौ-सौ दीप जलाये।
उसे कहा भगवान और उसके मठ-मंदिर किये प्रतिष्ठित,
उसके यशोगान से हमने करदीं दशों दिशायें गुंजित।
उन जयजयकारों में उसकी बात सुनें, अवकाश कहाँ था?
खुली आँख देखें, नयनों में इतना भला प्रकाश कहाँ था?
हमने उसकी हर पुकार पर अपना-अपना रंग चढ़ाया,
उसकी दिव्य ज्योति के नीचे अपना किल्विष पाप छिपाया।
ले ले उसका नाम सदा हमने अपना ही स्वारथ साधा,
फिरभी अपनी छलछन्दी करनी का भार उसीपर लादा।
उसने सागर मथा. अमृत दे हमें स्वयं विष-पान करलिया,
हमपर छाये धूमकेतु वारण को सर्वस दान कर दिया।
हमने उसे छला जीवनभर, किया सदा जो-जो मन माना,
केवल तुतलाते बालक-सा 'बापू, बापू' रटना जाना।
बहुत हुआ तो उसके कह कर खड़े कर लिये अपने स्मारक,
उसकी गुण-गाथा के पीछे सदा रहे हम आत्म-प्रचारक।

एक बार भी तो हमने उसको न अनावृत आखों देखा,
एक बार भी रख न सके हम उसके चरणों अपना लेखा।

S S S

ना जाने क्यों उमड़ पड़ी है फिरभी यह थोथी श्रद्धांजलि,
सर्व-भूत-हित हो न सका जब यह अपना तन,मन,जीवन वलि,
अश्रु छलक आये नयनों में और हृदय मे नीरव मन्थन,
काँप उठा है किस असह्य पीडा से इस काया का कण कण।
आज शपथ इस श्रद्धांजलि की,आज शपथ इन अश्रुकणों की,
मैं चलता हूँ आज शपथ ले बापू के पुनीत चरणों की।
जन-जागृति के अभिनन्दन में अपनी साँस-साँस हो अर्पित,
सुन्दर को सुन्दरतर करने में अपना सर्वस्व समर्पित।
मैं बढ़ता हूँ नव-प्रभात में नयी साध, नव-निश्चय लेकर,
नव-संस्कृति के शुभ्र सोध में यह तन बने नींव का पत्थर।

४८

सुप्रभात !

उतर रही हेमकिरण

मन्द चरण ।

स्वागत है !

विश्व अनुराग रक्त,

रोमांचित अंग अंग

मुखरित दिक् दिक् प्रगीत ।

जागृत हो,

अवनी के आँगन में

जीवन का पुण्यपर्व ।
विकसो हे नव वसन्त
जगती के जीर्ण पत्र
विगलित हों ।
नूतन दल, नव प्रसून ।
सज्जित हो डाल डाल,
नूतन पट, आभरण
विहँसो हे नव जीवन,
विहँसो हे जन जीवन
निर्मलतर, उन्नत तर ।
विकसित हो मानबमन
मुक्तधरा, मुक्त गगन,
मुक्त गिरा, मुक्त पवन,
चिन्तन उन्मुक्त ।
जाति-वर्ण-सीमा-गतभेदलुप्त,
शोषण बिधि ध्वस्त
वर्ग भेद अस्त ।
छिन्न नागपाश
रुढ़ियों के, अन्धदासता गतानुगति के ।
प्रसरित निर्बन्ध प्यार,
सुप्रतीति,
सुमिलित हों धर्म, नीति,

मानव मानव समान
मुक्त प्राण।
अभिसृत हो संसृति में
पौराणिक कल्पस्वर्ग,
अपवर्ग, अवतीर्ण
बापू का राम राज्य।
मानव के पादपद्म
दैवत की अर्घ्यञ्जलि,
हरित भरित प्रस्पित हो
सुफलित हो,
पुण्य अवनि
देव जनानि।
उतरो हे सुप्रकाश,
नूतन संस्कृतिविकास।
स्वागत है,
स्वागत हे सुप्रभात!

❀

४६

दूर गये बादर कजरारे फिर से खिली जुन्हाई।
झीने घूँघट में अम्बर की विधु-वदनी मुसकायी।

चढ़ते यौवन-सी अकूल नदियाँ, वे चञ्चल नाले,
मतवाले बगुलों के दल आकाश नापने वाले,
विरत, विनत, विश्रान्त; वन्दना से सारस-स्वर जागे,
सन्ध्या की बाहों में सोयी थकी-थकी पुरवाई।

सावन-भादों गोद पिया की सौदामिनि सुख सोती,
अलका की विरहिणी अश्रु की माला रही पिरोती,
मिला मेघ-सन्देश यक्षिणी का घर-आँगन महँका,
आषाढ़ी की अमा शरद की पूरनिमा बन आयी।

घुटन-भरी कारा से छूटे बछड़े बैल रँभाते,
गूँथ कुमुदिनी की मालायें ग्वाले मंगल गाते,
पटसन की पायल पर भाँवर भरती भोली बाला,
गोफन भूल टाँड़ पर तरुणी खंजन देख लुभाई।

सन के नूपुर, बाँसमती के कंगन सुरभि-बसाये,
सोनजुही के हार, ज्वार के कर्णफूल लटकाये,
फूलदार घाँघरा, ओढ़नी हरी, चूनरी धानी,
काँसों में मुसकान लुटाती कौन वधूटी आयी ?

तारों से आकाश भरा, फूलों से भू का अञ्चल,
कोटि करों से बरसाता है कौन धरा पर मंगल,
सर-सरियों में रास रचाने उतरीं नभ-अप्सरियाँ,
भीग उठा तन-मन यह किसने नयी रागिनी गायी ?

❀

५०

कशमकश है,

बात यों मन में उठे होने चला पूरा बरस है।

पग कि जिसने राह में रुकना न जाना,

सिर कि जिसने चाह में झुकना न जाना,

धुन्ध अन्धड़ खूब झेले,

आफ़तों के लाख रेले,

चीर कर सब को बढ़ा यह,

संकटों के सिर चढ़ा यह।

आग उगली, नीर ढाला
और झंझावात पाला।
अब इसे कुछ हो गया है,
कण्ठ जैसे खो गया है।
मूर्ति वह ढलती नहीं है,
चल रही थी लेखनी जिस वेग से चलती नहीं है।
बात क्या तब ठीक है यह ?
(कि) तीसरा दिन का प्रहर है
या कि ज्वार उतार पर है।
खो गयी क्षमता कहीं है,
धमनियों में रक्त की जो गति रही वैसी नहीं है।
किन्तु कैसे मान लूँ मैं ?
जब कि जाग्रत् कल्पना है
और आकर्षण, कुतूहल आज भी वैसा बना है।
जब कि ऊषा मुस्कराती,
या सजीली साँझ गाती,
औ' नवोढा यामिनी के अंग जब आभरण सजते
या कि जब बादल गरजते
और बिजली चमचमाती
औ' किसी की मुखर करुणा सात परदे चीर आती;

या कि जमता झोपड़ी में ढोलकी पर मस्त आल्हा
या पथिक कोई अलापे बैठ तरु की छाँह विरहा;
दूर बस्ती से कहीं एकान्त सरिता के तटों में
बैठ ऊँचे बालुका के दूह पर या झुरमुटों में
एक चरवाहा कि हलवाहा कभी जी खोल गाता
यों थकन दिन की मिटाता ।

प्रात के बढ़ते हुये कर थाम जैसे
बकरियाँ बछड़े कहीं खोये हुये से
नाचते हैं, कूदते थकते नहीं हैं
लाख पग बाँधो मग मगर रुकते नहीं हैं ।
देख यह सब देह की सुधि भूल जाता,
स्वर्ग के सुख भूल जाता ।
ये अमित आनन्द देते,
नित्य नूतन छन्द देते ।
किन्तु वे आवेग जो टिकते नहीं थे,
स्थैर्य के हाथों कभी बिकते नहीं थे,
आज उनमें धीरता है,
कुछ अधिक गम्भीरता है ।
वे सुपरिचित गीत मेरे

गुनगुना उठता जिन्हें एकान्त सन्ध्या या सबेरे
अब कहीं खो से गये हैं
और वे स्पन्दन हिला दें जो शिरायें
अब-कहीं सो-से गये हैं ।
क्योंकि वे शपथें कि वादे
स्नेह के मीठे इरादे
जो हृदय को गुदगुदाते
या दृगों सावन बसाते,
छन्द बन उर में उतरते
और जिनके स्पर्श-भर से धूलि-कण भी स्वर्ण बनते
वे प्रलय के मत्त गाने,
क्रान्ति के जलते तराने
जो उठें भूडोल कर दें,
एक भूमि खगोल कर दें
आज कुछ भाते नहीं हैं
और पहले सा ज्वलित सन्देश अब लाते नहीं है ।
मूर्ति जो पथ-दीप बन चलती रही है,
अनवरत जलती रही है,
आज धुँधली पड़ गयी है
यदपि गहरी गड़ गयी है ।

एक पल बरसात जो रुकती नहीं थी,
ज्वाल बाडव-सी तदपि चुकती नहीं थी,
आज जैसे वह गयी है
एक स्मृति भर रह गया है।
आग से बच बच चलूँ मन माँगता है,
और सीमायें बहुत कम लाँघता है।
किन्तु हँस-हँस कर सहे सौ शाप क्षमता जग गयी है,
जो कि जन-जन पर लुटे वह आज ममता जग गयी है।
और पहले से अधिक गहरी हुयी है,
प्रणय की धारा यदपि ठहरी हुयी है।
बात है, आवरण से आवृत नहीं है,
प्राश राजत पाश से छादित नहीं है।
कल्पना का रंग थोड़ा कम गया है,
भावना का वेग थोड़ा थम गया है,
किन्तु आज प्रवाह उसका मुड़ गया है
कर्म और विवेक उसमें जुड़ गया है।
बन गयी परितृप्ति जो कल तक तृषा थी,
आज जीवन-ज्योति है जो कल मृषा थी।
आज ऐसा है कि मैं पथ देखता हूँ,
आज ऐसा है कि इति-अथ देखता हूँ।

एक पावस थी कि बिजली और बादल
कौंध, धारासार, कर्दम और हलचल
यह शरद आयी कि सब कुछ छँट गया है,
अभ्र का प्रावार जैसे फट गया है।
और हरियाली-विमिश्रित श्वेतिमा है,
बन गयी जैसे अमा अब पूर्णिमा है।
सृष्टि के दोनों सुभग शृंगार हैं ये,
रंग दो पर दो नहीं आकार हैं ये।
तब नहीं चिन्ता कि यदि घट रिस चला है
और उभरा अंक कुछ कुछ घिस चला है।
एक धारा मेघ उसमें झूलते हैं,
साँझ और विहान उसमें फूलते हैं,
संग रवि के रंग आते और जाते,
रात को सौ चाँद उसमें मुसकराते
किन्तु उसका रंग हम पहचानते हैं
रूप सौ बदलें उन्हें हम एक छाया मानते हैं।
और जीवन धार है, लघु घट नहीं है
जो कि गल गल कर फटे वह पट नहीं है।
व्योम पर गूँजे, अमर संगीत है यह

काल के सिर चढ़ चले वह गीत है यह ।
हों प्रणय या प्रलय बस सोपान हैं ये
सत्य-साधन-मेध-स्वस्तिक-गान हैं ये ।
बस प्रणय की धार कुण्ठित हो न पाये
एक छोटे बिन्दु में ही खो न जाये;
और सीमा-हीन का आँचल न छूटे
सत्य की संवेदना का स्वर न रूठे ।
फिर भला क्या भय कि यौवन रीतता है,
फिर भला क्या भय कि जीवन बीतता है,
फिर भला क्या भय कि मन उस वेग न चला
और क्या चिन्ता कलम का पन्थ बदला ?
रीतती प्रतिपल तदपि गागर भरी है,
और झर झर वाटिका अपनी हरी है ।
पूर्ण में से पूर्ण को फिर फिर घटाया
किन्तु फिर भी पूर्ण को घटता न पाया ।
पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते,
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।

*

लेखक की कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

उच्छ्वास—लेखक की ५० कविताओं का, श्री भगवतीचरण वर्मा की भूमिका सहित, १९३९ में प्रकाशित प्रथम संग्रह।

अरुणिमा—श्री माखनलाल चतुर्वेदी की भूमिका सहित, लेखक की ५० कविताओं का १९४६ में प्रकाशित संग्रह।

मिट्टी की गाड़ी—सुप्रसिद्ध संस्कृत नाटक 'मृच्छकटिक' का हिन्दी अनुवाद। हिन्दी में प्रथम वार, अविकल रूप से प्रकाशित।

अभिनव मनोविज्ञानम्—प्राच्य तथा पाश्चात्य मनोविज्ञान का संस्कृत भाषा में विवेचनात्मक अध्ययन जिसमें मनोविश्लेषण भी सम्मिलित है। इस विषय पर संस्कृत में यह प्रथम पुस्तक है। पृष्ठ संख्या लगभग ५००।